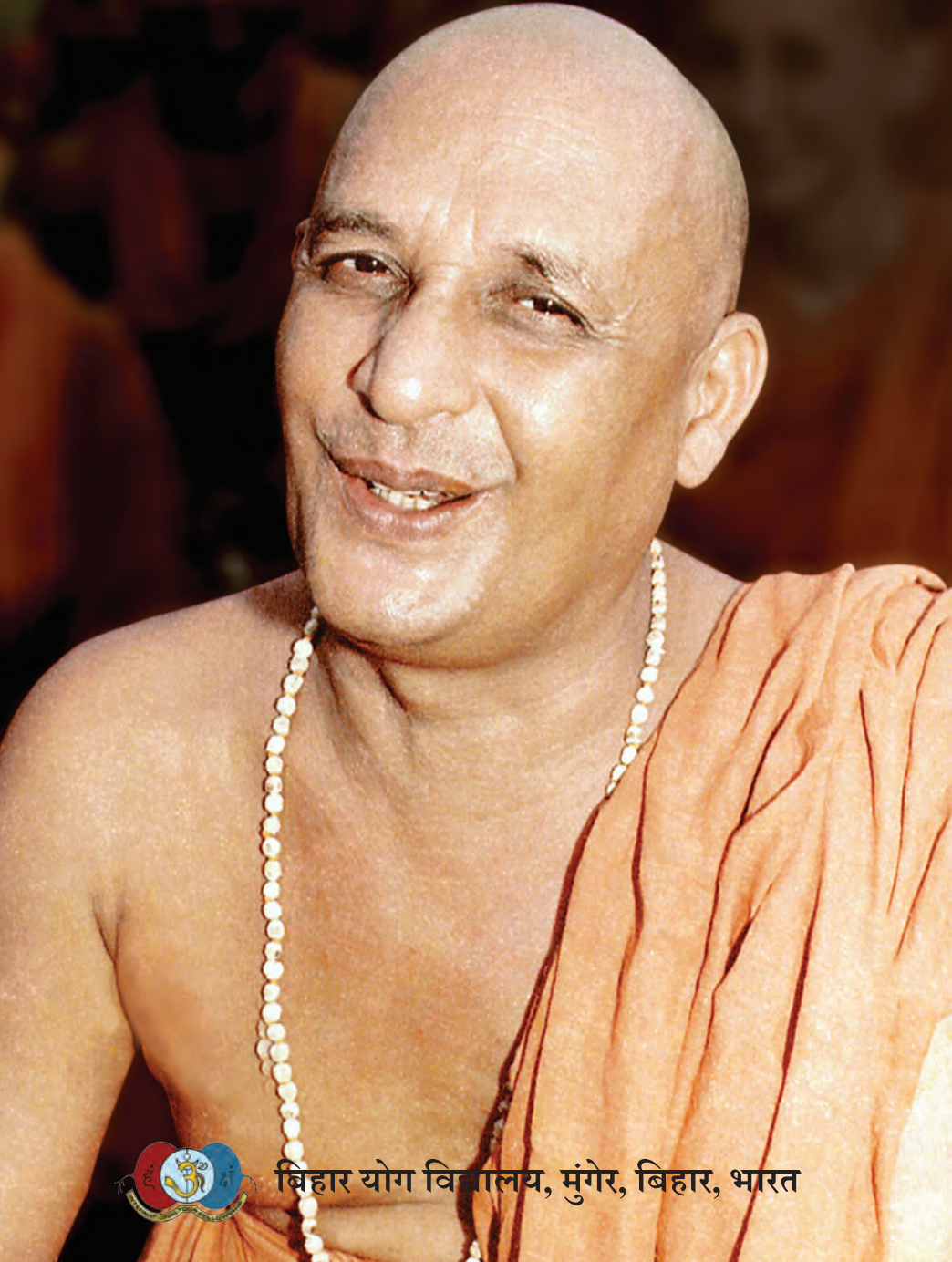


योगविद्या

वर्ष 12 अंक 7
जुलाई 2023



बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत



हरिः ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारीयों प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर,
811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।
थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद,
121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2023

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प : (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

कुल पृष्ठ संख्या : 56 (कवर पृष्ठों सहित)

कवर: स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

अन्दर के प्लेट: 1. स्वामी शिवानन्द सरस्वती
2-3. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
4. स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती



सत्यम् के प्रति उनके गुरु,
स्वामी शिवानन्द जी के उद्गार

जुलाई 1962

दिव्य आत्मन्

सत्यम् को आशीष!

मैं आप लोगों की संस्था 'इन्टरनेशनल योग फेलोशिप' के लिए अपना हार्दिक सन्देश भेजता हूँ। महाप्रभु आपके महान् कार्य को सफल बनायें। इसके लिए मैं विश्वनाथ प्रभु का प्रसाद भी साथ में भेज रहा हूँ।

मानव समाज की तह में घुसी घृणा, लोभ, मोह, स्वार्थपरता और ईर्ष्या को हटाकर आप आत्म-शान्ति का सन्देश सुनाइये। आत्म-शान्ति से ही विश्व-शान्ति की समस्या हल हो सकती है। भगवान आपके महान् कार्य में मदद करें।

– स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित

मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथूरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा

स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 12 अंक 7 जुलाई 2023
(प्रकाशन का 61 वाँ वर्ष)

विषय सूची

- 4 गुरु के प्रति आज्ञाकारिता
- 8 अंतरंग साधना में गुरु की भूमिका
- 13 अंतर्यामी परमहंसजी
- 15 गुरु के साथ सम्बन्ध की स्थापना
- 18 एक सिद्ध मंत्र का उद्भव
- 20 गुरु मेरी पूजा, गुरु गोविंद
- 24 आंतरिक रूपान्तरण
- 33 गुरु-कृपा की महिमा
- 38 आश्चर्य किंतु सच, मेरे साथ जो हुआ
- 40 गुरु-भक्ति कैसे जगायें?
- 42 मुक्त मन
- 45 सत्यम् सेतु
- 49 भगवान के रूप

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

गुरु के प्रति आज्ञाकारिता

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

एक महान् शिष्य की अनिवार्य योग्यता गुरु के आदेशों का तत्काल और स्वतः पालन करना है। यदि वह इस क्षेत्र में इस सद्गुण का उपार्जन करता है तो दूसरे क्षेत्र में भी ऐसा हो जाता है। गुरु के वचनों और आदेशों के अनुसार साधना में अनायास सफलता तभी मिलती है, जबकि शिष्य का पूरा व्यक्तित्व आज्ञाकारी बन जाए।

जैसे भी हो, शिष्य को चाहिए कि वह गुरु की आज्ञाओं का अक्षरशः पालन करे। ऐसा हो जाना चाहिए मानो कोई अज्ञात और अदृश्य शक्ति उसे उस कार्य के लिए बाध्य कर रही हो। शिष्य को यह ख्याल नहीं करना चाहिए कि वह काम करने के लायक है या नहीं। उसे यह भी नहीं सोचना चाहिए कि वह काम कैसे सम्भव होगा। जो शिष्य किसी भी कार्य को निभाने के लिए अपनी शक्ति का अन्दाज लगाता है, वह अवसर खो देगा, भले ही गुरु उसे उसकी गुप्त शक्तियों के साथ समाधि में जगा सके। इसलिए, शिष्य को



चाहिए कि वह बिना किसी पूर्वाग्रह के आज्ञा पालन करे। यह उसके लिए महान् वरदान सिद्ध होगा, जिसकी उसे इस समय महती अपेक्षा है, जबकि वह चेतना के छिपे लोकों में प्रवेश पाना चाहता है और जहाँ उसका गुरु ही उसे एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में ले जा सकता है।

यदि कहीं उसकी चेतना में आज्ञा विरोध करने का दोष रहा, तो वह सविकल्प समाधि के स्तर पर अपने गुरु के कथनानुसार आगे बढ़ना कठिन जाएगा। जब गुरु अपने शिष्य को समाधि देता है, तो यह जरूरी शर्त है कि शिष्य का अन्तःकरण प्रशिक्षित हो, जो न केवल आज्ञा चक्र में गुरु को सुन सके, बल्कि वैसा ही सोचे भी। अतः आज्ञा का अर्थ मेरी समझ में एक ऐसी मानसिक सूत्रता से है, जो दोनों को सूक्ष्म लोकों में मिलाकर रखती है। इसलिए शिष्य के जीवन में इसे पवित्र और मूल्यवान् माना गया है।

गुरु का आदेश आज्ञा चक्र से मिलता है। गुरु चिदाकाश में बोलता है। अपने को शिष्य से मिलाने वाली विचारधाराओं के प्रभाव को जाँचने के लिए गुरु कई उपायों से आज्ञा देता है, जिसे जानने की जरूरत शिष्य को नहीं।

शिष्यों की चाल धीमी होती है, उत्साह आधा। सफलता-असफलता की भी उन्हें विशेष परवाह नहीं रहती। वे प्रयोग करते हैं और कहते हैं देखा जाएगा। ऐसे शिष्य साधना में सदा असफल रहते हैं। सच्चे शिष्य समाधि के लिए उतने ही व्यग्र रहते हैं जितना उनका गुरु। होना तो चाहिए कि शिष्य का निश्चय गुरु से अधिक दृढ़ हो और वह गुरु की दृष्टि में साधना की एक प्रेरणा बने। सच्चे शिष्य योग मार्ग में गुरु के मार्गदर्शक बनते हैं।

और भी शर्तें हैं जिन्हें शिष्य को जान लेना चाहिए और राजी होना चाहिए, यदि वह आध्यात्मिक इनाम चाहे तो। उन शर्तों का सम्बन्ध योग शास्त्रों से है, मौखिक उपदेशों से नहीं। शर्तें बहुत सख्त, कठिन, संकरी, कड़ी और दुःखदायक हैं। कोई कल्पना ही नहीं कर सकता कि अपार्थिव शक्ति और ज्ञान के पथ पर चलने के लिए इतने बन्धन, रोड़े, शर्तें और विधि-निषेध होंगे। कई तो सुनते ही ठण्डे पड़ जाते हैं। कई निराश होकर लौट जाते हैं। अधिकांश शर्तों की कड़ाई से ही कांपने लगते हैं। बिरला ही गुरु के साथ चलने के लिए इस मार्ग पर टिकता है। जिस मार्ग पर तुम चल रहे हो, उस पर चलते-चलते तुम्हें इन सब कठिनाइयों का पता चलेगा।

केवल शिष्य को ही नहीं, गुरु को भी शर्तों का पालन करना पड़ता है। वह भी शिष्य के साथ पवित्र, महान् और निष्काम सम्बन्धों में मिल जाता है।

योग और धर्म के शास्त्रीय नियम उसे भी बाँधते हैं। उसे उन धर्मों का पालन करना पड़ता है, जो शिष्य के आध्यात्मिक हित में होते हैं। पवित्र, निष्काम और दिव्य प्रतिज्ञाएँ उन दोनों को आगे-आगे ले जाती हैं। यदि दोनों में से किसी ने भी उन नियमों का उल्लंघन किया, तो वे उस पर बिगड़ती हैं।

मैं तो ऊँचे लोकों की बातें कह रहा हूँ – साधारण मानव की पहुँच के परे की, न कि घर के त्याग की, शरीर के त्याग की, सुविधाओं के त्याग की। मैं कुछ दूसरी बात कह रहा हूँ, जिसे सब नहीं समझ सकेंगे।

साधना के मार्ग में आगे बढ़ने पर मन पर पड़ने वाले आघातों का ज्ञान रहता है, किन्तु चतुर साधक प्रभावों से ऊपर रहता है। आरम्भ में मन और इन्द्रियों के कोलाहल का ज्ञान रहने पर भी यह हो सकता है कि आत्मा पर इनकी प्रतिक्रिया न घटे।

न तो प्रत्येक मोह-ममता के परे जाया जा सकता है और न आरम्भ में उनको जीता ही जा सकता है। यह सही है कि माया, ममता और मोह को त्यागने की इच्छा होते हुए भी वासनाओं के कारण वे साधक का पिण्ड नहीं छोड़ते और वह मन, प्राण एवं इन्द्रियों के आवेगों को सह नहीं सकता।

जब बात ऐसी है तो सबसे सरल और सम्भव साधन यही है कि विवेक के द्वारा, बुद्धियोग के द्वारा उनका सामना किया जाए। ऐसा हो जाने पर कामना, द्वेष, राग, ईर्ष्या आदि में रहने पर भी हम अपनी आत्मा को इन तीव्र आवेगों से अछूता रख सकते हैं। विवेकशील साधक काम और क्रोध से उत्पन्न वेगों को सह सकता है।

अनासक्ति के अभ्यास में कर्मों की संगति बनी रह सकती है, किन्तु उनसे उत्पन्न प्रभावों को तो जीतना ही पड़ेगा। न तो काम, न मोह और ममता ही साधक को बाँध सकती है, यदि वह आत्मा में ही सुख, आराम और ज्योति की खोज करता है। यह कहना ठीक नहीं कि मन और इन्द्रियों के धर्मों से नाता तोड़ देने पर ही ब्रह्म निर्वाण की प्राप्ति होती है। यदि तुम उस अवस्था के लिए प्रतीक्षा करोगे तो तुम्हें युग-युग निराश होना पड़ेगा। तुम्हें तो अपनी भावनाओं के प्रवाह की धारा को चिदाकाश की ज्योति और ब्रह्मज्ञान की ओर उन्मुख करना होगा। तुम्हें तो अपना आदर्श बदल कर भावनाओं, अनुभूतियों और सम्वेदनाओं को आध्यात्मिक रूप देना होगा।

कोई जरूरी नहीं कि काम को मारा जाए। कोई जरूरी नहीं कि सम्बन्धों का नाश किया जाए। कोई जरूरी नहीं कि द्वेष को दबाया जाए। निश्चय

ही इन आवेगों से जूझने की कोई आवश्यकता नहीं। बल्कि उन्हें दिव्य मार्ग का पथिक बना दो। तब तुम देखोगे कि धारार्ये महायज्ञ की ओर दौड़ती जा रही हैं। तब तुम घृणा तो करोगे, किन्तु अपने अज्ञान से। तब तुम सम्बन्ध तो रखोगे, किन्तु अपने निश्चित आदर्शों से। तब तुम राग तो रखोगे, किन्तु अपने इष्ट से। तब तुम्हें लोभ तो होगा, किन्तु यौगिक विभूतियों का। असन्तोष होगा योग साधना में प्रमाद हो जाने से। इस तरह तुम अन्तःकरण और इन्द्रियों के तमाम धर्मों को मारे बिना ही उनका उपयोग महायज्ञ के लिये कर सकोगे।



कहने का मतलब यह कि तुम्हें अनासक्ति और अध्यात्मीकरण की युक्ति जाननी है। अपने द्वारा माने गए अवगुणों और अपनी महानता से प्रभावित न होना, बल्कि चिदाकाश में बारम्बार उड़कर पुरुष की संगति करना। तभी तुम्हारी समस्त प्रवृत्तियाँ अद्वैत अनुभूति की ओर दौड़ती जाएँगी, यद्यपि ऊपर से देखने पर सब तुम्हें संसारी समझेंगे।

जो कुछ कहा गया, वह अन्तरंग युक्ति है। बुद्धि या साहित्य से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। जो कुछ कहा गया, उसे तुम पल भर में ग्रहण कर सकते हो, अथवा कभी नहीं, क्योंकि यह केवल समझने का विषय है। जो मार्ग दिया गया है, उस पर अप्रभावित होकर चलो। अप्रभावित रहकर सोचो, विचारो, रहो, कर्म करो और बोलो, जैसे एक अवधूत लहर और प्रेरणा के मुहूर्त में करता है। सदा अवधूत की तरह रहकर अपने जीवन को सुगन्धित एवं पुष्ट बनाकर तुम चिदाकाश में उड़ो, धरती में विचरो, पाताल में जाओ, उपवन में रहो, द्वीप में रहो, संगीत सुनो, सुगन्ध पाओ, चाँद-सूरज को देखो, कभी गंगा, कभी यमुना, तो कभी सरस्वती स्नान करो, देवांगनाओं की सभा का संगीत सुनो, कैलाश घूम कर आओ। परन्तु रहो यहीं, जहाँ हो तुम। यह गुरु ने शिष्य से कहा।

अंतरंग साधना में गुरु की भूमिका

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

अध्यात्म-मार्ग में दो बातें प्रमुख हैं, एक है साधन, और दूसरा साध्य। अनेकों उपासक गलती से साधन को ही साध्य मान बैठते हैं। पूजा या जप, जिसकी महत्ता शास्त्रों में बताई गई है, वे साधन ही हैं, साध्य नहीं हो सकते। साध्य तो केवलमात्र आत्म-दर्शन है, आत्मानुभूति है। जिस समय आत्म-दर्शन होने लगता है, सभी साधनायें स्वतः समाप्त हो जाती हैं। शास्त्रों में जितनी भी साधनायें बतलाई गई हैं, सब-की-सब एक स्थल पर आकर स्वयं समाप्त हो जाती हैं। ये सभी साधनायें बहिरंग हैं। इसके बाद एक दूसरी ही साधना प्रारम्भ होती है।

इन्द्रियों के द्वारा हम जिन साधनाओं को करते हैं, वे सभी बहिरंग हैं, चाहे वह राजयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग या कर्मयोग ही क्यों न हो। वैसे तो शास्त्रों में लिखा है कि यम-नियम, आसन और प्राणायाम बहिरंग-साधनाएँ हैं, तथा प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि अंतरंग-साधनाएँ हैं। एक अन्य जगह लिखा है कि अपरा-भक्ति बहिरंग साधन है और पराभक्ति अंतरंग है। वैसे ही



कर्म बहिरंग और अनासक्ति अंतरंग है। सत्संग बहिरंग साधन है तथा चिंतन-मनन अंतरंग है। पर यदि अनुभव के आधार पर देखा जाए तो एक स्थिति में पहुँचने पर उपरोक्त सब-के-सब बहिरंग हो जाते हैं। प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की दृष्टि में अवश्य ही आसन, प्राणायाम, यम और नियम बहिरंग साधन हैं। इन्द्रियों के द्वारा की जाने वाली साधनायें बहिरंग हैं, और इनकी अपेक्षा मन के माध्यम से की जाने वाली साधनायें अंतरंग, लेकिन यदि बुद्धि के माध्यम से की जाने वाली साधना से तुलना की जाए, तो मन के द्वारा की जाने वाली साधनायें बहिरंग जान पड़ेगी और बुद्धि से की जाने वाली अंतरंग। अंत में एक स्थिति ऐसी आती है, जब इन्द्रियों के द्वारा की जाने वाली तपस्या, मन के द्वारा किया जाने वाला ध्यान, बुद्धि के द्वारा किया जाने वाला आत्म-निर्णय, और चित्त के द्वारा देखे जाने वाले प्राचीन संस्कार आदि सब-के-सब एक जगह पर पहुँचकर ठप्प हो जाते हैं।

आंतरिक मार्ग

कल्पना कीजिये कि आप किसी अंधेरी सुरंग से गुजर रहे हैं। कुछ दूर तक तो बाहर का प्रकाश आपकी सहायता करता है, जिसके आधार पर आप आगे बढ़ते हैं। कुछ और आगे बढ़ने के बाद अंधकार और भी गाढ़ा हो जाता है, पर रास्ता सीधा होने के कारण आप कुछ और आगे बढ़ते हैं। फिर एक ऐसा भी स्थल आता है, जहाँ पहुँचने पर लगता है कि सामने का रास्ता एक दीवार से बंद है। अगल-बगल चारों ओर मीलों अंधेरा रास्ता है, जिसका कोई पता नहीं। यहाँ यदि सामने का रास्ता स्वयं खुल जाय तो संभव है कि आप आगे बढ़ सकते हैं, अन्यथा क्या उपाय है? बस यही स्थिति ध्यान के मार्ग की है। यद्यपि तीन अक्षरों से बना 'समाधि' शब्द बड़ा सरल मालूम पड़ता है, पर यह स्वयं गम्य है ही नहीं, भले ही पुस्तकों में लिखा रहे कि समाधि प्रत्येक मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है। एक विशेष स्थिति तक, या यँ कहें कि सूक्ष्म की स्थिति तक आप स्वयं जा सकते हैं, यहाँ तक कि कारण-शरीर में भी कुछ हद तक बढ़ सकते हैं। चेतना के भी कुछ स्तरों को भेद सकते हैं, पर एक ऐसी स्थिति आती है, जहाँ आप स्वयं शून्य हो जाते हैं, आप बुत बनकर बैठ जाते हैं। आपको पता ही नहीं रहता कि आप कौन हैं, और कहाँ जाना चाहते हैं। यहाँ से आगे साधक तब तक नहीं बढ़ सकता है, जब तक कि उसे बढ़ाने वाला कोई गुरु न हो।

यहाँ प्रश्न उठता है कि अध्यात्म की इस स्थिति को प्राप्त करने के लिये किसका सहारा लिया जाय? कुछ लोगों की राय है कि गुरु ही एकमात्र आलम्बन है, पर कुछ के अनुसार स्वयं भगवान ही आलम्बन है। कुछ ऐसा भी मानते हैं कि बिना इस पर सोचे केवल साधना करते जाना चाहिये।

केवल किसी को गुरु बना लेने मात्र से ही वह श्रेष्ठ आलम्बन हो जाय, ऐसी बात नहीं है। ध्यान की उस स्थिति में जहाँ व्यक्ति का जीव-भाव नहीं रहता, उसकी व्यक्तिगत चेतना नहीं रहती, उसको आगे गुरु ही ले चलता है। इसका अर्थ यह हुआ कि जब साधक की चेतना अंतर्लोकों में गमन करती है तो वहाँ एक स्थल पर वह रुक जाती है। वहाँ से उसे गुरु का सूक्ष्म-रूप ही आगे ले जाता है। गुरु में इतनी शक्ति रहनी चाहिये कि वे स्थूल रूप में तो रहें, पर सूक्ष्म रूप में भी रह सकें। जिस गुरु का सूक्ष्म-रूप प्रबल होगा, वही साधक को सूक्ष्म अवस्था में आगे ले जा सकता है।

गुरु के सूक्ष्म निर्देश

हमारे यहाँ 'गुरु' शब्द दो अर्थों में व्यवहृत हुआ है। एक तो वह जिससे हम मंत्र-दीक्षा लेते हैं, और दूसरा, अंधकार का निवारण करने वाला। गुरु वह है जो हमारी अध्यात्म-साधना में पथ-प्रदर्शक का काम करता है। हमारे शरीर के अन्दर एक प्रमुख चक्र है जिसे हम 'आज्ञा चक्र' कहते हैं। कुछ लोग इसे गुरु-चक्र भी कहते हैं। इसका स्थान भ्रूमध्य के पीछे जहाँ सुषुम्ना समाप्त होती है, वहीं है। इसकी एक अपनी विशेषता है। साधना के सिलसिले में ज्यो-ज्यो साधक की बाह्य चेतना अचेत होती जाती है, उसी अनुपात में यह चक्र जगता जाता है। एक ओर मन, बुद्धि, चित्त और इन्द्रियों का लोप होते जाता है, तथा दूसरी ओर इष्ट-देव का चित्र स्पष्ट होता जाता है और इसके साथ-ही-साथ आज्ञा-चक्र जाग्रत होता जाता है। ज्यों ही इन्द्रियाँ बहिर्मुख हुयीं कि वह अन्दर गया। ध्यान की अवस्था में उन्हीं का आज्ञा चक्र जाग्रत होता है, जिनकी इन्द्रियाँ कम चंचल हैं और मन एक हद तक शांत तथा अनासक्त है। कुछ ऐसे भी हैं जिनका आज्ञा चक्र ध्यान के बाहर भी जाग्रत रहता है, पर ऐसे व्यक्ति विरले ही मिलते हैं।

ध्यान की अवस्था में जब आदेश ग्रहण करने वाली प्रत्येक इन्द्रिय सो जाती है, तब यही आज्ञा चक्र गुरु का सूक्ष्म आदेश ग्रहण करता है। इसके सिवाय अनुभव के सभी झरोखे बन्द हो जाते हैं।



स्थूल और सूक्ष्म के बीच एक पर्दा है, स्वर-निरोधक के जैसा। जब कोई स्थूल अवस्था में रहता है तो उसे सूक्ष्म स्वर सुनाई नहीं देता और जब सूक्ष्म में चला जाता है, तो स्थूल आवाज सुनाई नहीं देती। एक क्षेत्र में होने वाले अनुभव का प्रवेश दूसरे क्षेत्र में नहीं हो पाता है। ध्वनि-स्पन्दनों की अलग-अलग आवृत्तियाँ होती हैं और हमारी इन्द्रियाँ एक खास हद तक होने वाले कम्पन को पकड़ने की क्षमता रखती हैं, न अधिक न कम।

गुरु जिन शब्दों के माध्यम से शिष्य को आदेश देता है, वे शब्द सूक्ष्म होने चाहिये। गुरु भी ऐसे हों जो शब्दों की सूक्ष्म प्रेषण कला को जानें। ये शब्द विचारों से उत्पन्न नहीं होते, क्योंकि विचार तो मन से पैदा होते हैं। वे सूक्ष्म कैसे हो सकते हैं? वे शब्द केवल गुरु की आत्म-प्रेरणा से उत्पन्न होते हैं। इसीलिये जो गुरु सूक्ष्म में रहते हैं, वे ही सूक्ष्म शब्द पैदा कर सकते हैं, पर यह कितना कठिन है! सदा सूक्ष्म में रहना सम्भव नहीं। इस अवस्था में कर्म-क्रिया नहीं होती है। एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। इसके लिये क्रिया-कर्म,

जगत् के बंधन, सुख-दुःख से दूर, इन्द्रिय, मन, और बुद्धि के भी ऊपर, शुभ या अशुभ, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, जो भी प्रभाव हों, उन्हें छोड़ना पड़ता है।

ऐसा गुरु शायद ही मिलता है। यद्यपि उसकी सभी इन्द्रियाँ स्वाभाविक कार्य करती हैं, पर वह रहता है सूक्ष्म में। ऐसा गुरु जब अपने शिष्य को शब्दों का बाण मारता है, तब शिष्य के आज्ञा चक्र में एक प्रकार की प्रतिस्फूर्ति होती है, जो उसे साधना-पथ पर आगे ले जाती है। जिस समय शिष्य को यह शब्द बाण लगता है, उसे ऐसा अनुभव होता है जैसे वह किसी अन्धरे कमरे से आगे निकल गया हो, और एक बहुत बड़े क्षेत्र में पहुँच गया हो। वह दुनिया स्वप्नों या संस्कारों की दुनिया जैसी दिखलाई नहीं देती। वह देखने में बिल्कुल स्थूल जगत् जैसी लगती है, जहाँ सभी कार्य-कलाप, अनुभव, स्पर्श आदि ठीक बाह्य जगत् जैसे ही होते हैं। यह अंतर्जगत् ठीक बाह्य-जगत् के जैसा ही है, केवल एक फर्क है। बाह्य जगत् नाशवान है, अंतर्जगत् अविनाशी। उस जगत् में पहुँचने के बाद यह जगत् एक बार असत्य दिखाई पड़ने लगता है। यह तभी सम्भव है जब आज्ञा चक्र खुल जाता है, और वहाँ गुरु का आदेश सुनाई पड़ने लगता है। इसके आगे साधक को गुरु के शब्द को छोड़कर कोई साधना सुनाई नहीं देती। यहाँ तक तो उसने अनेक उपाय कर आज्ञा चक्र को जगाया। इसके आगे गुरु के ही शब्द ले जाते हैं। आगे बढ़ने के बाद वह आत्मा के प्रकाश का अनुभव करता है और देखता है कि मैं और मेरी आत्मा, दोनों एक हैं। दोनों के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं। 'जानत तुमहि तुमहि होई जाई' वाली बात होती है। यही राजयोग, कर्मयोग, या अन्य साधनाओं का साध्य है।



अंतर्यामी परमहंसजी

स्वामी स्वयंभूनाथ सरस्वती

सन् 1985 के मई माह में बिहार योग विद्यालय, मुंगेर द्वारा संचालित 'स्वास्थ्य रक्षा सत्र' में अपने अग्रज की सलाह पर प्रवेश लिया। उस समय मैं घर में व्याधियों से संघर्ष कर रहा था और बीमारी ठीक ही नहीं हो पा रही थी। मेरी उम्र बत्तीस वर्ष की थी, मैं अविवाहित एवं टी.सी.एस में कंप्यूटर ऑपरेटर के पद पर कार्यरत था।

मुझे सत्र के दौरान परमहंसजी के दर्शन हुये। मैं आश्रम में आसन-प्राणायाम सीख रहा था। परमहंस जी ने मुझे व्यायाम और जॉगिंग करने का आदेश दिया। मैं उनके आदेश को शिरोधार्य करते हुये जॉगिंग भी करने लगा, जिसका परिणाम यह हुआ कि मेरे शरीर में स्फूर्ति आ गयी और योगाभ्यास के प्रति रुचि बढ़ गयी। आश्रम में योग प्रशिक्षक द्वारा बताए गए आसनों के लाभ सुनकर मेरे मन में उत्सुकता जागृत हुई कि क्यों न इन आसनों का प्रयोग स्वयं पर कर जल्दी स्वस्थ हो जाऊँ? मेरा प्रयोग सफल रहा। मैं जल्द ही स्वस्थ होने लगा। मुझे व्याधियों से मुक्ति मिल गई। आश्रम में की गयी यौगिक क्रियाओं से मुझे आश्चर्यजनक शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक लाभ हुये और मैं स्वस्थ होकर घर लौट आया।

आश्रम में दैनिक योग-साधना के अंतर्गत समग्र यौगिक क्रियाएँ, आसन-प्राणायाम, जप-ध्यान एवं स्वाध्याय भी सिखलाया गया। दोपहर के समय का उपयोग मैं परमहंस जी द्वारा लिखित किताबों को पढ़ने में किया करता था। परमहंसजी की जिस पुस्तक को पढ़कर मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ, वह थी 'योग साधना'। उनकी शिक्षाओं को आत्मसात् कर मैं उनकी ओर आकृष्ट होने लगा एवं मन-ही-मन उन्हें अपना सद्गुरु मानने लगा। कृपालु सद्गुरु की कृपा भी मुझ पर हुई, परिणामस्वरूप उसी वर्ष की नवरात्रि में मेरी मंत्र दीक्षा हो गयी। दीक्षा के समय परमहंसजी के वचन थे, 'अभी रोज पांच माला करना, आगे तुम्हें और भी काम करना है।'

मैं बचपन से ही आध्यात्मिक प्रवृत्ति का था। मंत्र दीक्षा से मेरे जीवन में परिवर्तन होने लगा। अंतर्यामी परमहंसजी मेरे भीतर छिपी हुई प्रतिभा को तुरंत



पहचान गए। उन्हीं की प्रेरणा से मैं योग के मार्ग में आगे बढ़ता चला गया। स्वप्न में संन्यास दीक्षा का आश्वासन भी मिला। यह स्वप्न सन् 1988, मुंगेर गुरु पूर्णिमा का है। परमहंसजी शिष्यों को पूर्ण संन्यास की दीक्षा देते दिखाई दे रहे थे और मैं बड़े कौतूहल के साथ इस दृश्य को देख रहा था। मेरे मन में विचार आने लगे कि मेरी संन्यास की दीक्षा कब होगी। मैं चिंतित था। तत्क्षण स्वप्न के अगले दृश्य में देखा कि परमहंसजी मेरी ओर दृष्टिपात करते हुए कह रहे थे कि तुम्हारी भी संन्यास की दीक्षा हो जाएगी।

अंतर्यामी परमहंसजी द्वारा स्वप्न में दर्शन देकर की गई भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई। परमहंस जी की ओर से पूज्य गुरुदेव, स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती जी ने सन् 1992 में मुझे संन्यास परम्परा में दीक्षित कर, मुझे नाम दिया – स्वामी स्वयंभूनाथ सरस्वती। आज मैं जो कुछ हूँ, स्वामी सत्यानन्द जी की कृपा, उनके आशीर्वाद से हूँ। उन्हीं के आशीर्वाद से मैंने गुरु-सेवा का कार्य किया और अपने जीवन का उत्थान किए। ऐसे सद्गुरु का चिंतन मेरे हृदय में सदा बना रहे, उन्हें मेरा शत-शत नमन!

गुरु के साथ सम्बन्ध की स्थापना

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

जैसे ही आप गुरु से मन्त्र प्राप्त करने का निर्णय लेते हैं, आप उनसे एक सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। सर्वप्रथम गुरु और शिष्य का सम्बन्ध आत्मा के स्तर पर स्थापित होता है। इसके बाद वह भावनात्मक स्तर पर और अन्त में मानसिक स्तर पर आता है। तब आप इसे समझ सकते हैं और गुरु के पास जाते हैं। आप उनसे मन्त्र के लिये निवेदन करते हैं और वे आपको एक मन्त्र प्रदान करते हैं। उसके बाद गुरु महत्त्वहीन हो जाते हैं तथा सिर्फ एक कार्य महत्त्वपूर्ण हो जाता है। आपको दिन-रात निरन्तर मन्त्र का जप करना है, यहाँ तक कि कुछ समय के बाद वह आपके सम्पूर्ण व्यक्तित्व में समाहित हो जाए।

भक्ति एक अति सहज, स्वाभाविक प्रक्रिया है। जिस प्रकार प्रेम और घृणा करने की शिक्षा नहीं दी जा सकती है, वैसे ही भक्ति सीखी नहीं जा सकती और न आरोपित की जा सकती है। यदि आपके हृदय में गुरु के प्रति भक्ति नहीं है तो कुछ नहीं किया जा सकता। आपकी भक्ति-भावना को सशक्त बनाने के लिये विटामिन की कोई गोली उपलब्ध नहीं है। भक्ति तो सहज, स्वाभाविक और प्रकृति के अनुकूल ही हो सकती है। आध्यात्मिक क्षेत्र में गुरु-शिष्य सम्बन्ध निश्चय ही अति घनिष्ठ और आत्मीय होना चाहिये, किन्तु सदैव ऐसा होना सम्भव नहीं है। भक्ति की भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ होती हैं और हर व्यक्ति की भक्ति बिल्कुल एक समान नहीं हो सकती। कुछ शिष्यों की भक्ति मन्द और शिथिल होती है तो कुछ भक्ति-भावना से विह्वल रहते हैं।

गुरु की खोज

अनेक व्यक्तियों के लिये गुरु-शिष्य सम्बन्ध सिर्फ औपचारिक होते हैं। वास्तव में यह सम्बन्ध तो इस बात पर निर्भर रहता है कि शिष्य कितना गहरा और विकसित है। मैं तीन बार शिष्य बना। जब मैं अपने माता-पिता के साथ था तो एक महिला सन्त के सम्पर्क में आया। मैं मात्र दस वर्ष का था और वे युवती थीं, उनकी उम्र पचीस वर्ष थी। उन्होंने मुझे कुछ आध्यात्मिक मार्गदर्शन दिया और इसलिये वे मेरी गुरु हुयीं। मैं उनका इसलिये आदर करता था कि उनमें अत्यधिक आध्यात्मिक ऊर्जा और कान्ति थी।

अनेक वर्षों के बाद जब मैंने अपना घर छोड़ा तब गुरु की खोज में सम्पूर्ण देश में भटकता रहा। सर्वप्रथम मैं पश्चिम भारत के एक आश्रम में गया। मैं वहाँ इसलिये गया कि मेरी बहन वहाँ क्रियायोग सीख रही थी। उसने सोचा कि उनके गुरु मेरे भी गुरु हो सकते हैं। वे एक भले आदमी थे, लगभग सत्तर वर्ष के थे। वे मितभाषी और शान्त थे तथा मुझे बहुत पसन्द करते थे। मैं भी उन्हें पसन्द करता था, परन्तु मैं समझता था कि वे मेरे अन्तिम लक्ष्य नहीं हैं।

कुछ सप्ताह बाद मैंने वह आश्रम छोड़ दिया और पुनः बीहड़ों में भटकने लगा। मेरे पास ऋषिकेश के एक स्वामीजी का पता था, अतः मैं उनसे मिलने गया। वे एक प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् थे तथा स्वामी शिवानन्द जी के आश्रम के बहुत निकट रहते थे। मैंने उनसे कहा कि मैं शिष्य बनना चाहता हूँ और उन्होंने स्वामी शिवानन्द जी के आश्रम की ओर इंगित करते हुए कहा कि 'उस आश्रम में जाओ।' अगले दिन सबेरे मैं वहाँ गया और स्वामी शिवानन्द जी से मिला। वे उस समय कम-से-कम पचास वर्ष के अवश्य रहे होंगे। उन्हें देखते ही मैं समझ गया कि मैं अपनी यात्रा के अन्तिम बिन्दु पर पहुँच गया हूँ और मेरा अनुमान बिल्कुल सही था।

वास्तविक गुरु-भक्ति

मैं उनके साथ बहुत लम्बे समय तक रहा, किन्तु कभी भी भावुकता से प्रेरित नहीं हुआ और न विह्वल या उन्मत्त ही हुआ। तथापि उनके प्रेम और मेरी भक्ति का प्रभाव इतना गहरा था कि मैं दिन-रात आश्रम के काम-काज में व्यस्त रहा करता था। सोना तो दूर रहा, कभी-कभी तो भोजन करने का समय भी नहीं मिलता था। आश्रम का निर्माण करने के लिये मैं अथक परिश्रम करता था, किन्तु वे यह सब नहीं चाहते थे। हर बार कोई नया भवन या कमरा तैयार करने के बाद जब मैं उन्हें आशीर्वाद देने के लिये बुलाता, तो वे कहते, 'तुमने एक और माया, एक और सूक्ष्म बन्धन का निर्माण किया है।' और इस प्रकार मैंने अनेक वर्षों तक स्वामी शिवानन्द जी के लिये एक भिन्न प्रकार की भक्ति के साथ कार्य किया। यह भावनात्मक, बौद्धिक या मानसिक भक्ति नहीं थी। यह वास्तविक भक्ति थी, क्रियात्मक भक्ति।

गुरु के प्रति इस प्रकार की भक्ति में क्या रखा है कि आप निरन्तर उनका नाम जपते रहें, लेकिन गन्दगी में बैठे रहें! यदि उनका आश्रम उजाड़ हो और उनकी फुलवारी में फूल न हों तो यह कैसी भक्ति हुई? शिष्य की भक्ति



वास्तविक होनी चाहिये। जब मेरे गुरु का जन्मदिन मनाया जाता था तो सभी शिष्य उनकी पूजा करने जाया करते थे। मैं नहीं जाता था। इसके बदले मैं रसोईघर में जाकर काम किया करता था। मेरे गुरु-भाई मुझसे पूछा करते थे, 'अरे, तुम स्वामीजी के प्रति भक्ति क्यों नहीं दिखाते?' मैं कहा करता था, 'तुम्हारी भक्ति भावनात्मक है, जबकि मेरी भक्ति वास्तविक है।'

सम्बन्ध की व्यावहारिकता

आप यह अवश्य याद रखें कि गुरु-शिष्य सम्बन्ध अनेक प्रकार के होते हैं। तन्त्र में गुरु-शिष्य सम्बन्ध बिल्कुल पूर्ण होता है। तांत्रिक ढाँचे के अन्तर्गत गुरु और शिष्य के बीच सभी प्रकार के सम्बन्धों का अभ्यास किया जा सकता है। किन्तु यदि आप गृहस्थ हैं तो यह सम्भव नहीं है। जो व्यक्ति एक पति, पत्नी, पुत्र या पुत्री है, वह सामाजिक प्रतिबद्धताओं और भावनात्मक दायित्वों से जुड़ा हुआ है। इसलिए उसे परिवार और गुरु के प्रति अपने दायित्वों के बीच निश्चय ही सन्तुलन स्थापित करना चाहिये।

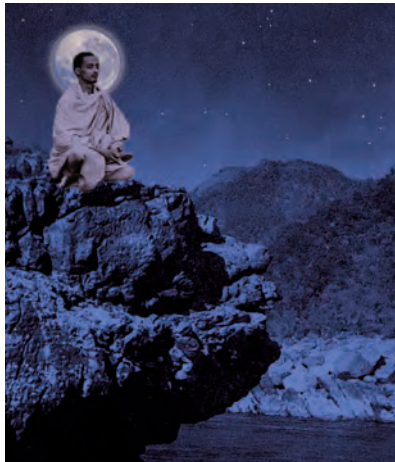
गुरु के साथ प्रत्येक व्यक्ति का सम्बन्ध सहज, परम्परागत और व्यावहारिक होना चाहिये। यदि आप गृहस्थ हैं तो अपने गुरु के पास जाकर एक मन्त्र के लिये निवेदन कीजिये, उसे श्रद्धा से ग्रहण कीजिये तथा गुरु का 'हरिः ॐ' से अभिवादन कीजिये। इसके पश्चात् घर जाकर मन्त्र का अभ्यास कीजिये। जब भी आप अभ्यास के लिये बैठें, अपने गुरु का स्मरण करें और अभ्यास के अन्त में भी उनका स्मरण करें। गुरु से आपके सम्बन्ध का यही आधार होना चाहिये।

एक सिद्ध मंत्र का उद्भव

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

संन्यास में दीक्षित होने के बाद मेरे जीवन में एक बहुत कठिन समय आया जब मुझे शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक स्तर पर बहुत संघर्ष करना पड़ा। मुझे कड़ी मेहनत करनी होती थी, पर मेरा शरीर कमजोर और निर्बल हो गया था। हमारा भोजन बहुत सादा था। मुझे पीलिया, मुँह में छाले, पैराटॉयफायड, फिर टॉयफायड हुआ और मैं हमेशा बीमार रहता था। फिर भी निरंतर काम करना होता था। एक दिन जब मैं थक कर चूर बैठा हुआ था तो सोचने लगा, 'मैं इस स्थिति से निकलने के लिए क्या कर सकता हूँ?' तभी मेरे मन में एक मंत्र उभरा। मंत्र लम्बा था और मैंने उसे लिख लिया। फिर मैंने स्वामीजी के पास जाकर कहा, 'मुझे अभी अन्तःप्रेरणा मिली है और मन में एक मंत्र उभरा है। अब मैं क्या करूँ?' उन्होंने कहा 'पुरश्चरण करो।'

पुरश्चरण का अभिप्राय यह होता है कि मंत्र में जितने अक्षर हों उतने लाख बार उसे जपना है। अगर मंत्र में 24 अक्षर हैं तो उसे 24 लाख बार जपना है, अगर 5 अक्षर हैं तो 5 लाख बार। खैर, मेरे मंत्र में 24 अक्षर थे! मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि अब मैं इसका क्या करूँ। पुरश्चरण सम्पन्न करने में सालों-साल लग सकते थे और मेरे पास समय भी नहीं था। सुबह से रात तक मैं आश्रम के काम-काज में व्यस्त रहता था, और रात से सुबह तक मेरी स्थिति ऐसी रहती मानो कोई घोड़े बेचकर सो रहा हो। फिर भी मैंने सोचा, 'जो भी हो, मैं कम-से-कम कोशिश तो जरूर करूँगा।'



शाम के समय जब मेरे आश्रम के कार्य समाप्त हो जाते तो मैं गंगा तट पर जाकर बैठ जाता। मैं वहीं बैठकर मंत्र साधना करता। शुरु में मैंने जप की गिनती रखने की कोशिश की, लेकिन कुछ दिनों बाद मेरे लिए इसका हिसाब रखना बहुत कठिन हो

गया। इसलिए मैंने गिनती रखनी बन्द कर दी। मैंने यही सोचा कि जब मैं मंत्र की नियत गिनती पूरी कर लूँगा तो मुझे वह अनुभव अपने आप होना चाहिए, अर्थात् मैंने अपने मन में संकल्प किया, 'अगर मैं इस मंत्र का पुरश्चरण पूर्ण कर लेता हूँ तो मुझे यह अनुभव होना चाहिए।' यही निश्चित करके मैंने अपना जप जारी रखा, और पुरश्चरण की इस अवधि में मुझे अनेक अनोखे अनुभव हुए।

सन् 1956 तक मैंने गुरुजी के आश्रम में ही उस मंत्र का जप किया और उसके बाद जब मैं आश्रम छोड़कर परिव्राजक के रूप में भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, नेपाल, तिब्बत, बर्मा और श्रीलंका में घूम रहा था, तब भी मैं नित्य प्रतिदिन जप करता रहा। मैंने अपना यह पुरश्चरण मुंगेर में सम्पन्न किया, उस स्थान पर जहाँ आज हमारा नया आश्रम है। जब पुरश्चरण पूर्ण होने वाला था तो मुझे आश्चर्यजनक अनुभव होने लगे, जिन्हें संभालना बहुत मुश्किल था। कभी-कभी तो लगता कि मैं पागल हो जाऊँगा। मेरे मन में अजीबोगरीब विचार आते। अपनी खुली आँखों से भी अनोखी आकृतियाँ दिखाई पड़तीं। मैंने मनोविज्ञान और चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन किया है, इसलिए स्वाभाविक था कि जब मैं यह सब देखता तो मुझे लगता कि मैं पागल हो रहा हूँ। और उस समय मैं बिल्कुल अकेला था। 'अगर मैं पागल हो जाऊँ तो मुझे पागलखाने में डालने वाला भी कोई मौजूद नहीं।' न कोई सुरक्षा, न कोई संरक्षक, और मुझे विचित्र अनुभूतियाँ होतीं। एक अजीब चीज मैं अनुभव करता कि मैं हाथ में पत्थर लेकर इतनी जोर से दबा रहा हूँ कि वह चूरा बन जाता। यह विचार मेरे मन में बराबर आता, अपनी मुट्ठी में एक पत्थर को तब तक पीसना जब तक वह चूरे का ढेर न बन जाए। उस समय ऐसा अनुभव होता मानो मैं यह वास्तव में कर रहा हूँ!

श्री स्वामीजी द्वारा उल्लिखित मंत्र शिवानन्द गायत्री है –

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे शिवानन्दाय धीमहि तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात् ।

शिवानन्द गायत्री के मंत्रद्रष्टा ऋषि सत्यानन्द हैं। महादेव शिवानन्द इसके देवता हैं। ॐ इसका बीज मंत्र है। महासमाधिमय परम ज्ञान और व्यावहारिक जीवन इसका उपदेश है। परम गुरु की प्राप्ति के लिये इसका विनियोग है।

– सम्पादक

श्रद्धांजलि

गुरु मेरी पूजा, गुरु गोविंद दिनेश खरे, दुर्ग

आदिगुरु शंकराचार्य विरचित विवेक चूडामणि का एक प्रसिद्ध श्लोक है जिसका सार है कि इस संसार में मनुष्य का जन्म, मोक्ष की इच्छा तथा ज्ञानी महापुरुषों का सत्संग – इन तीनों का मिलना दुर्लभ है, जो सिर्फ भगवान की कृपा से प्राप्त होता है।

दुर्लभं त्रयमेवैतत् देवानुग्रह-हेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुष-संश्रयः॥

बड़े भाग मानुष तन पावा, सुर दुर्लभ सब ग्रंथहि गावा – हिन्दू धर्म की मान्यता के अनुसार जीवात्मा चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद मनुष्य का जन्म पाता है, इससे भी कहीं अधिक दुर्लभ है महापुरुषों का मिलना, संतों का मिलना, सद्गुरु का मिलना। *बिनु हरिकृपा मिलहि नहिं संता।*

सद्गुरु अपने शिष्य का हर तरह से जन्म-जन्मान्तर तक कल्याण करते रहते हैं, जब तक कि शिष्य का उद्धार न हो जाय। यही श्रद्धाभाव एवं प्रेमपूर्वक समर्पण की इच्छा लिए हम भी परमहंस सत्यानन्द सरस्वती जी की शरण में रायपुर पहुँचे, जहाँ सत्यदर्शन योगाश्रम में गुरु-पूर्णिमा महोत्सव का आयोजन था।

मेरी गुरु दीक्षा

रविवार, 24 जुलाई 1983, गुरु-पूर्णिमा के शुभ मुहूर्त में मेरी मंत्र दीक्षा हुई। जैसे ही हमें पता चला कि श्री स्वामीजी भक्तों को दीक्षा दे रहे हैं, हमारी प्रबल इच्छा हुई कि हमें अब गुरु-शरण में शरणागत होना चाहिए। हम गुरु दीक्षा लेने हेतु कतार में लग गए। पूज्य गुरुदेव अपने कमरे में मुस्कुराते हुये सुंदर आसन पर सुशोभित हो रहे थे। हमें देखते ही सामने बैठ जाने का इशारा किया और तुरंत हमारे इष्टदेव से संबन्धित मंत्र देकर तुलसी की माला पहना दी और बोले कि रोज दो माला जपना।

मंत्र दीक्षा के तुरंत बाद पूज्य गुरुदेव सत्संग हॉल में आशीर्वचन देने पहुँच गए, जहाँ शिष्यों ने गुरुजी की पूजा-अर्चना की। पूज्य गुरुदेव यहाँ



एक साधारण-सी कुर्सी पर आसीन थे और उनकी शिष्या माँ धर्मशक्ति जी सेवा करते अपने आराध्य के चरणों में बैठी व्यवस्था देख रही थीं। हमने भी अनुशासन का पालन करते हुए पूज्य गुरुदेव को तिलक लगाकर आरती की, श्रीफल भेंट किया एवं गुरुजी के चरणों की वंदना कर अपने जीवन का उद्देश्य सफल माना कि हमें भगवान मिल गए – बंदऊँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नर रूप हरि – मैं उन गुरु महाराज के चरणकमल की वंदना करता हूँ, जो कृपा के सागर और नर रूप में श्रीहरि ही हैं। इस अवसर पर श्री स्वामीजी ने जो सत्संग दिया उसका सार यहाँ प्रस्तुत है।

भक्तों के नाम सत्यम्-संदेश

मैं गुरु-पूर्णिमा के महोत्सव में सन् 1964 से ही भाग लेता आ रहा हूँ और इस अवसर पर मेरे उपस्थित होने का यह अंतिम साल है। इसके बाद मैं इस प्रकार के किसी भी कार्यक्रम में भाग नहीं लूँगा। इसलिए इस साल की गुरु-पूर्णिमा बहुत महत्त्व रखती है। यह बात मैं आप सभी लोगों को स्पष्टतः समझा देना चाहता हूँ। पिछले साल गुरु-पूर्णिमा तक हमारा व्यक्तित्व स्तंभित रहता था

और दो भागों में बँटा रहता था – एक बाहरी और दूसरा आंतरिक, अर्थात् एक साधु बाबा और दूसरा गुरुजी। दोनों की भूमिका हमें निभानी पड़ती थी। मुश्किल तो बहुत पड़ती थी, मगर हाँ, मैंने किसी तरह 15-20 साल निभा लिया। हमें आप लोगों को देखकर बहुत अजीब लगता है। आप लोग कैसी गृहस्थी निभा रहे हो, हमारी समझ में नहीं आता।

पहले जब गुरु-पूर्णिमा होती थी तो मेरे को लगता था कि गुरुजी की गुरु-पूर्णिमा हो रही है या साधक की। आप लोगों को तो इस भेद का पता नहीं लगता है, क्योंकि आप लोग श्रद्धालु हो और श्रद्धा में इतना प्रकाश होता है कि आँखें चौंधिया जाती हैं, बहुत चीजें दिखाई नहीं देती हैं। जिस प्रकार 10-20-30 सूरज के एकत्रित होने से आंखे चौंधिया जाती हैं, उसी प्रकार श्रद्धा के प्रकाश में कुछ दोष दिखाई नहीं देता है। इस साल जो गुरु-पूर्णिमा मनाई जा रही है, यह एक स्वच्छंद साधु के लिए मनाई जा रही है, जिसके ऊपर कोई दायित्व नहीं है, जिसका किसी से लगाव नहीं है। इस उत्सव में आज यहाँ पर किसी को न इनाम देना है, न पुरस्कार देना है। अब मैं सभी प्रकार की जिम्मेदारियों से स्वतंत्र होकर देश-विदेश में योग को घर-घर पहुँचाऊँगा और प्रकृति की गोद में कहीं भी विचरण करूँगा। जब मर्जी होगी तो आऊँगा अथवा नहीं आऊँगा। मैं किसी चीज से बँधा हुआ थोड़े ही हूँ। यह दायित्व आपने दिया और इसी के कारण आप लोग तकलीफ में रह रहे हैं।

पूर्वजों की शक्तिशाली परंपरा को पुनर्जीवित करने के लिए आपकी गुरु-पूर्णिमा का महत्त्व हमने बढ़ाया है। गुरु-पूर्णिमा की परंपरा इस साल ठीक रही है, किन्तु अगले साल जहाँ भी गुरु-पूर्णिमा होगी, वहाँ दूसरे गुरुजी को बुला लेना, क्योंकि अब मेरे साथ बाह्याडंबर नहीं चलेगा, क्योंकि जब आदमी की वृत्ति आध्यात्मिक हो जाती है तो उस समय उसके मन की आंतरिक सतहों में बहुत-सी चीजें उपयुक्त नहीं बैठती हैं। यह आप लोगों की समझ में आएगा कि नहीं? अगर तुम साधना के द्वारा अपने अंतर्जगत् को थोड़ा-बहुत सूक्ष्म करोगे तब अपनी अंतश्चेतना की प्रकृति सही रूप में समझ में आ जाएगी। जिस व्यक्ति की वृत्तियाँ सात्त्विक व आध्यात्मिक हो जाती हैं उसके मन की आंतरिक सतहों में अनावश्यक चीजें जमती नहीं हैं। शायद यही कारण है कि मेरे मन में गुरु-पूर्णिमा का यह बाह्य उपक्रम जम नहीं रहा है।

टीका लगाना, आरती उतारना, पैर धुलवाना, पैर छुआना आदि इस स्थूल पूजा के माध्यम से हमको लगता था कि इन लोगों का कम-से-कम कुछ

आध्यात्मिक संस्कार तो बन रहा होगा, किन्तु यह कर्मकांड मात्र बौद्धिक ही बनकर रह गया। आपने इस बाह्य गुरु के माध्यम से अपने आंतरिक गुरु को उजागर करने की कभी चेष्टा नहीं की। इसलिए अब यह कर्मकांड का तर्क भी मेरे मन से हटता जा रहा है। यदि आपको पैर पूजना ही है तो अगले साल से आपको दूसरा पैर ढूँढना पड़ेगा – जिंदा नहीं तो लकड़ी का ही सही। यह इसलिए बोल रहा हूँ क्योंकि रायपुर में 1983 की गुरु-पूर्णिमा मेरी व्यक्तिगत उपस्थिति की अंतिम गुरु-पूर्णिमा है। हम मरेंगे नहीं, किन्तु अब दूसरा परिवर्तन होना चाहिए। हमको यह व्यर्थ का उपक्रम अब अच्छा नहीं लगता है, फिर भी हमारी इच्छा है कि आषाढ पूर्णमासी के दिन सभी भक्त लोग किसी आश्रम या संस्था में इकट्ठे होकर इस पुण्य त्योहार को अवश्य मनाएँ। एक साथ जमा होकर भजन-कीर्तन और मंत्र पाठ का आयोजन करें तथा प्रसाद बाँटें। यदि गुरु-चरण की पूजा करनी है तो गुरुजी की लकड़ी वाली पादुका की पूजा करो, क्या हर्ज है? लकड़ी तो चमड़े से ज्यादा शुद्ध होती है। चमड़े का मतलब है 'गुरुजी का चरण' और लकड़ी का मतलब होता है 'गुरु जी की खड़ाऊँ', जो शिष्य और भक्त के सिर पर समय-समय पर पड़ती रहती है।

एक आखिरी बात और कहने की है – हर व्यक्ति को गुरु-दीक्षा लेने के बाद उस मंत्र की नियमित साधना करनी चाहिए। साधना के बिना जीवन में आत्मविश्वास नहीं आता। जब तक आत्मविश्वास नहीं आता, तब तक रोज-रोज दुनिया में जो तकलीफें होती हैं, वे दूर नहीं होतीं। हर रोज वही-वही तकलीफें आती हैं, तुम नहीं देखते हो क्या? अब उस तकलीफ को दूर करने के लिए कहाँ जाओगे, बोलो? तुम्हारे पास भी वह शक्ति बीज रूप में विद्यमान है, जिसे साधना के द्वारा विकसित करके अपनी समस्याओं का निराकरण कर सकते हो। इसके लिए अपनी साधना को श्रद्धापूर्वक नियमित रूप से थोड़ा-बहुत करना है। थोड़ा-बहुत का मतलब पंद्रह-बीस मिनट आसन, प्राणायाम, जप-ध्यान आदि का अभ्यास नियम बनाकर करो। यह साधना हफ्तों तक की जाती है, कभी महीनों तक की जाती है और कभी-कभी सालों तक की जाती है। इस साधना से अपने अंदर एक दिव्य शक्ति का उद्भव होता है, जिसको आत्म-शक्ति या अध्यात्म-शक्ति कहते हैं। इसी शक्ति को जागृत करने हेतु आज आपको मंत्र दिया गया है और आज गुरु-पूर्णिमा में आप सब लोगों को यही संदेश देने के लिए दूर-दूर से बुलाया गया है।

आंतरिक रूपांतरण

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती



जब आप गृहस्थ जीवन से असंतुष्ट होकर उससे बाहर आने के लिये छटपटाने लगते हैं, तब उसे अपना आध्यात्मिक पुनर्जन्म मानिये। कदाचित् आप उससे मुक्ति न पा सकें तो आपको गृहस्थ जीवन में एक भिन्न चेतना के साथ रहना चाहिये। इसे ही कर्म संन्यास के नाम से जाना जाता है।

गृहस्थ जीवन में आप कर्मों में उलझे रहते हैं। यहाँ आप जो भी कर्म करते हैं उनसे पुनः नये कर्मों की सृष्टि होती है। उनसे ही संस्कार बनते हैं। संस्कारों से आपके बन्धन का कारण आपकी आसक्ति है, क्योंकि आप जो कुछ करते हैं, उससे स्वयं को संलग्न करते हैं। परिवार से, बच्चों से, अपनी जिम्मेदारियों से स्वयं को संयुक्त करना संभव है। अब यह दूसरी बात है कि इसमें आपका दृष्टिकोण रागपूर्ण रहता है अथवा वैराग्यपूर्ण। सामान्यतः होता यह है कि इनसे आपका सम्बन्ध आसक्ति पर आधारित होता है। आज तक किसी ने भी आपको परिवार, रिश्तेदारों, मित्रों तथा धन-संपत्ति के साथ वैराग्यपूर्वक बर्ताव की शिक्षा नहीं दी है। जीवन को वैराग्यपूर्वक जीने की कला का नाम ही कर्म संन्यास है।

वैराग्य सोचने मात्र से नहीं आता। वह कोई दिमागी प्रक्रिया भी नहीं है। जब तक आपको कुछ ऐसे अनुभव नहीं होते जो आपके मन की गुणवत्ता को बदल दें, आप वैराग्य के तात्पर्य को नहीं समझ पायेंगे। अनासक्ति, संन्यास,

वैराग्य आदि को समझने के लिये बौद्धिक प्रक्रिया पर्याप्त नहीं होती। इसके लिये भिन्न प्रकार का मन होना जरूरी है। इसलिए मन का शिक्षण और प्रशिक्षण आवश्यक है। बौद्धिक स्तर पर आप जानते हैं कि कुछ भी आपका नहीं है और हर वस्तु क्षणिक तथा नाशवान् है। आप भले ही प्रतिदिन इन बातों को दुहराते रहें, परन्तु चूँकि हर वस्तु और व्यक्ति से आपकी ममता होती है, आप स्वयं को बाह्य रूप से हर घटना से जुड़ा हुआ अनुभव करते हैं।

एक समय की बात है कि एक साधु और एक मौलवी किसी जगह पास-पास रहते थे। एक दिन साधु ने अपने पड़ोसी को चीखते-चिल्लाते सुना। वह उसके घर पहुँचा और उसके दुःख का कारण पूछा। पड़ोसी ने कहा, 'महाराज! मेरी बकरी मर गई है।' साधु बोला, 'इसमें चीखने-चिल्लाने की क्या जरूरत है, एक-न-एक दिन तो सभी मरते हैं। रोने से बकरी लौट तो नहीं आयेगी।' इस तरह साधु ने अनेक प्रकार से समझा-बुझाकर अपने पड़ोसी को शांत कर दिया।

तीन माह बाद साधु की गाय मर गयी। इससे वह इतना दुःखी हुआ कि अनेक दिनों तक कुटिया से बाहर ही नहीं निकला। मौलवी को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह इसका कारण जानने के लिये साधु की कुटिया में पहुँचा। उसने देखा कि साधु बड़ा उदास और दुःखी है। जब उसने साधु से इसका कारण पूछा तो साधु ने कहा कि मेरी गाय मर गई है। मौलवी को तुरंत याद आया कि जब उसकी बकरी मरी थी तब साधु ने कैसे-कैसे तर्क देकर उसके दुःख को शान्त किया था। उसी लहजे में उसने साधु को समझाया कि गाय मर गयी तो क्या हुआ, हर पैदा होने वाली वस्तु एक दिन अवश्य मरती है। साधु ने अपने पड़ोसी की बात काटते हुए कहा कि मुझे तुम्हारी विद्वत्ता भरी बातें सुनने में कोई रुचि नहीं है, क्योंकि भले ही बकरी तुम्हारी रही हो, गाय तो मेरी अपनी थी!

यही बात हम सब अपने दैनिक जीवन में अनुभव करते हैं। बकरी मरने पर जब साधु मौलवी को समझा रहा था, उसके मन और बुद्धि का स्तर भिन्न था, परन्तु जब उसकी गाय मरी, उसकी मनःस्थिति पहले जैसी नहीं रह गई थी। वैराग्य या अनासक्ति के लिये कर्मत्याग की कतई जरूरत नहीं है। इसके लिये आपको अपने चिन्तन, अपने दर्शन को एक नई दिशा देने की आवश्यकता है। इसके द्वारा आप प्रत्येक व्यक्ति और वस्तु के साथ अपने सम्बन्धों को एक भिन्न दृष्टिकोण से देखेंगे। परन्तु इसके लिये भी आपको कुछ अनुभव होना आवश्यक है।

भले ही आपने योग-वाशिष्ठ का शुरू से अन्त तक अध्ययन किया हो, लेकिन अगर आपके परिवार में किसी के साथ कोई दुर्घटना घटती है तो उससे आप प्रभावित हुए बिना नहीं रहते, क्योंकि योग-वाशिष्ठ के अध्याय आपकी चेतना के ढाँचे में मौलिक रूपान्तरण नहीं ला सके हैं। इसके बदले उसने आपके बौद्धिक आयाम को विस्तृत किया है। इसलिये आप केवल इतना कहते हैं कि जीवन क्षणिक है, परन्तु इस विपदा से आप अपने को अप्रभावित नहीं रख पाते। इसलिये महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अपनी चेतना तथा अनुभूति में परिवर्तन लाइये, जो ध्यान के नियमित अभ्यास द्वारा संभव है। इसमें मंत्र जप तथा आत्म-विश्लेषण की तकनीकें भी बड़ी सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

प्रत्येक गृहस्थ के लिये कर्म संन्यास जरूरी तथा महत्त्वपूर्ण है। भले ही वर्तमान में आप इसे पूरी तरह स्वीकार करने की स्थिति में न हों, पर वर्ष में कम-से-कम पन्द्रह दिनों तक इसे अपनाकर देखिये। कुछ समय तक परिवार में संन्यासी की तरह रहने में हर्ज ही क्या है? अब आप इसे किस तरह व्यवहार में उतारेंगे? वैदिक परम्परानुसार संन्यासियों के रहने का एक विशिष्ट ढंग होता है। वे खाने, पीने, सोने, चलने-फिरने, मैत्री, भाव, राग, वैराग्य, जीवन-मरण तथा विवाह आदि के विषय में कुछ नियमों के अनुसार व्यवहार करते हैं। अब यदि कोई गृहस्थ वर्ष में कुछ समय इन नियमों के अनुसार रहे और व्यवहार करे तो इससे उसे गृहस्थाश्रम को समझने के लिये एक व्यापक दृष्टिकोण मिलेगा और वर्ष के शेष भाग में सामान्य जीवनयापन के लिये एक दिशा और प्रेरणा मिलेगी।

अनेक लोग गृहस्थ जीवन में सिर्फ इसलिये नहीं रहते कि इसके प्रति उनके मन में विशेष सम्मान की भावना है अथवा गृहस्थ जीवन का अपना रुतबा होता है। वे तो मात्र किसी मजबूरी अथवा अनिवार्यता के कारण एक तरह से 'फँस गया' अनुभव करते हैं। यदि ऐसी कोई अनिवार्यता अथवा मजबूरी न रह जाये तो मैं नहीं समझता कि कोई गृहस्थ जीवन में रहना पसंद करेगा। इसका स्पष्ट कारण मात्र यह है कि अपने विकास के क्रम में हम गृहस्थाश्रम के महत्त्व को समुचित ढंग से समझते ही नहीं। क्या गृहस्थाश्रम का मात्र इतना प्रयोजन है कि व्यक्ति अपनी मानसिक शक्ति को इन्द्रिय सुख भोगों में ही नष्ट कर दे? क्या गृहस्थाश्रम आत्म-साक्षात्कार की पूर्व तैयारी का पड़ाव नहीं हो सकता?

व्यक्ति को कर्म संन्यास कब लेना चाहिए? क्या छप्पन वर्ष की अवस्था में, जबकि आपको हृदयाघात का पहला झटका लग चुका हो अथवा सत्तर वर्ष की अवस्था में जब आपकी सारी जीवनी-शक्ति निचुड़ चुकी हो? नहीं,











आपको उसी क्षण कर्म संन्यास लेना चाहिए जब आपको यह अनुभव हो कि गृहस्थाश्रम साध्य नहीं, साधन है। आपको लगे कि अपने दैनिक कार्यों में लिप्त रहते हुए भी मेरे भीतर एक नूतन उच्च चेतना प्रस्फुटित होने लगी है, तब उसी क्षण अपने गुरुदेव से कर्म संन्यास, गेरू वस्त्र, माला, साधना और लक्ष्य तथा एक आध्यात्मिक नाम के लिये प्रार्थना कीजिये।

कर्म संन्यासी का एक लक्ष्य, एक मंजिल होती है, जबकि गृहस्थ की ऐसी कोई मंजिल नहीं होती। वह तो मात्र जीता है। भविष्य निधि, बच्चों की शिक्षा, शादी या जमीन-जायदाद आदि हमारा वास्तविक लक्ष्य अथवा प्रारब्ध नहीं हो सकते। जहाँ तक समग्र अस्तित्व का प्रश्न है, मंजिल दो हो ही नहीं सकती। लक्ष्य हमेशा एक होता है। जब आपके गुरु आपको अपना एक वास्तविक लक्ष्य बता देते हैं तब उसी क्षण से आप कर्म संन्यासी हो जाते हैं।

जब आप गेरू वस्त्र धारण करते हैं तो याद रखिये यह रंग गतिशीलता का द्योतक होता है। यह गतिशीलता बाह्य जीवन से नहीं, अपितु आपकी साधना और आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्धित होती है। गेरू वस्त्र वैराग्य और अनासक्ति का भी द्योतक होता है, परन्तु उसमें निष्क्रियता की मानसिकता थोड़ी भी नहीं होती। वह लक्ष्य के प्रति अपनी गतिशीलता को दर्शाता है। दो गेरू धोतियाँ रखिये और जब आप अपने काम-धंधे से लौटें तो वहाँ की पोशाक उतारकर इन्हें धारण कर लें।

यदि आपके लिये यह कर पाना संभव न हो तो कुछ दिनों के लिये अकेले आश्रम चले आइये। सिर के बाल मुड़ा लीजिये और गेरू वस्त्र धारण कर

लीजिये, फर्श पर सोइये, एक बार भोजन कीजिये, ब्रह्मचर्य का पालन कीजिये तथा पूर्ण संन्यासी की तरह रहिये। इस अवधि में धूम्रपान, रेडियो, समाचार-पत्र, राजनैतिक बहसबाजी, व्यवसाय, नौकरी आदि किसी भी विषय पर मगजपच्ची न कीजिये। केवल साधना कीजिये और उसी के बारे में सोचिये। आपके गुरुजी आपको बतायेंगे कि आपको क्या करना है – जप, लिखित जप, गीता या योग वाशिष्ठ का अध्ययन अथवा आसन-प्राणायाम। यदि वे इस विषय पर कुछ न कहें, मौन रहें, तो रसोई और बगीचे में काम कीजिये।

यदि आप वर्ष में मात्र पन्द्रह दिन संन्यासी की तरह जीवनयापन करें तो इससे आपको बड़े गहरे और सुन्दर अनुभव होंगे। इससे आपके मन के स्वरूप तथा व्यक्तित्व में कल्पनातीत सुधार होगा। इसके बाद जब आप घर लौटेंगे तो वस्तुओं, व्यक्तियों तथा घटनाओं को दूसरे ही दृष्टिकोण से देखेंगे। परिवार में शादी, विवाह, जन्म-मृत्यु, लड़ाई-झगड़े तो पूर्ववत् होते ही रहेंगे, परन्तु आप दूसरे ही ढंग से उनसे निपटेंगे। आध्यात्मिक साधकों और जिज्ञासुओं को यही भूमिका निभानी चाहिए। यह जरूरी नहीं कि आप जब अपने कार्यालय जायें तब भी गेरू वस्त्र ही पहनें। जब आपने कर्म संन्यास ले लिया है तो पूर्ण गृहस्थ तथा अंशकालिक संन्यासी, दोनों ही रूपों में रहिये।

कर्म संन्यासी के लिये एक जीवन-दर्शन, लक्ष्य और दो गेरू धोती जरूरी होते हैं। आपका एक आध्यात्मिक नाम भी होना चाहिए, क्योंकि माता-पिता ने आपका जो नाम रखा है उसका सम्बन्ध आपके भौतिक शरीर, धर्म और जाति से होता है, परन्तु आपके आध्यात्मिक नाम का सम्बन्ध आपकी आत्मा से होना जरूरी है। जैसे मेरा नाम सत्यानन्द है। जिस दिन गुरुदेव ने मुझे यह नाम प्रदान किया, मेरा प्रारब्ध ही बदल गया। जो दुःख मेरी जन्म-कुण्डली में लिखा था वह जरा भी सच नहीं उतरा, इसलिये नहीं कि भविष्य-वक्ता झूठा था अथवा जानकार नहीं था, परन्तु इसलिये कि मेरा समूचा प्रारब्ध ही बदल गया।

जिस क्षण से आप अपने आध्यात्मिक आत्मबल का प्रयोग करने लगते हैं, जिस क्षण से आप नये ढंग से सोचने लगते हैं, आपका प्रारब्ध बदलना प्रारंभ हो जाता है। चूँकि कर्म संन्यास आज के युग की एक महती आवश्यकता है, इसलिए उसे तथा वानप्रस्थाश्रम की प्राचीन व्यवस्था को पुनर्जीवित करना जरूरी है। पचास वर्ष की अवस्था आने तक प्रतीक्षा न कीजिये, विवाहोपरान्त गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने के बाद ही आप चाहें तो कर्म संन्यास ग्रहण कर सकते हैं।

गुरु-कृपा की महिमा

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

गुरु की कृपा ही परम सत्ता और एकमात्र वास्तविकता है। शिष्य के प्रसंग में यह बात पूरी तरह लागू होती है क्योंकि अपने आध्यात्मिक एवं सांसारिक जीवन के बीहड़, अगाध गर्त में वह किसकी ओर देखेगा? जब जहाज बन्दरगाह के निकट पहुँचने लगते हैं तब प्रकाशस्तम्भ उनका मार्गदर्शन करता है। जिस प्रकार एक जहाज चालक के लिये प्रकाशस्तम्भ अति आवश्यक है, उसी प्रकार शिष्य के मार्गदर्शन हेतु गुरु बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं।

यदि आप ध्यानपूर्वक चिन्तन करें तो अनुभव करेंगे कि आप वास्तव में यह नहीं जानते कि आप कौन हैं, कहाँ हैं। यथार्थ में हम अपने बारे में कुछ भी नहीं जानते, और यदि आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिये हम चेतना की गहराइयों में डुबकी लगाने का प्रयास करते हैं तो हमें डरावनी अनुभूतियों का सामना करना पड़ता है। जीवन के अन्धकारमय पथ के पथिक के हाथ में एक प्रकाश उपकरण तो होना ही चाहिये। इसीलिये हमलोग कहते हैं 'गुरुकृपा हि केवलम्'।

मेरे गुरु, स्वामी शिवानन्द जी एक सन्त थे, उपदेशक नहीं। हालाँकि वे ढाई सौ से अधिक पुस्तकों के लेखक थे, फिर भी वे बुद्धिवादी नहीं थे। वे एक बच्चे के समान निष्कपट और शुद्ध-भावना-सम्पन्न थे। उनके अनेक



प्रतिभाशाली शिष्य थे और आज, जिस प्रकार मैं उनकी कृपा का अनुभव कर रहा हूँ, मुझे पक्का विश्वास है कि उन सब को भी यह प्राप्त हो रही है।

जब मैं स्वामी शिवानन्द जी के साथ रहता था तब अपने आध्यात्मिक विकास हेतु घोर परिश्रम किया करता था। गुरु पद प्राप्त करने, आश्रम खोलने या शिष्य बनाने का मेरा कोई उद्देश्य नहीं था। आज भी यह बात मुझे कुछ अजीब-सी लगती है कि मैं एक गुरु हूँ। अनेक बार मैं अपने अन्दर गुरु को ढूँढ़ने का प्रयास करता हूँ, लेकिन मुझे वहाँ कोई गुरु नहीं मिलता। हाँ, अपने अन्दर शिष्यत्व को अवश्य देखता हूँ।

गुरु बनने का मेरा कभी कोई लक्ष्य नहीं था। मैं तो हवा की रुख के साथ उड़ते उन्मुक्त पक्षियों या सागर की उन्मत्त लहरों के समान जीना चाहता था। मेरा आदर्श था – न कुछ करना और न कुछ प्राप्त करना; न कुछ खोना और न कुछ पाना; किसी प्रकार अपना जीवन बिता देना, बस, इतना ही। सन् 1956 से 1963 तक इस प्रकार का जीवन बिताने में मैं सफल भी रहा। मैं न तो किसी एक स्थान में ठहरा और न किसी से सम्बन्ध जोड़ा। बस, एक साधारण भिक्षुक की तरह पूरे देश में घूमता रहा। उस समय अगर आप मुझे देखते तो मेरे भाग्य पर दया आती। मैं सड़कों पर रातें बिताया करता, किसी भी जगह का पानी पी लेता। मैं कहीं भी और किसी भी प्रकार के लोगों के साथ सो जाता। मैं इस तरह का जीवन पसन्द करता था क्योंकि उसमें पूर्ण स्वतन्त्रता थी। कोई भी मुझसे धार्मिक या सामाजिक नियमों के अनुकरण की अपेक्षा नहीं रखता था। कोई मुझसे परिवार, समाज या राष्ट्र के प्रति उत्तरदायित्व से सम्बन्धित बातें नहीं करता था।

फिर जुलाई 1963 की एक रात को मुझे आकाशवाणी सुनाई पड़ी। गुरु के आदेश स्पष्ट थे। आज मुझे लगता है कि मैं उन आदेशों का ही अनुसरण कर रहा हूँ। इसलिये नहीं कि मुझे सम्मान मिलता है, बल्कि इसलिये कि उन्होंने इस कार्य हेतु मुझे चुना। इसे ही गुरु-कृपा कहते हैं। यदि वे मुझे दुःख देंगे तो उसे भी मैं उनकी कृपा ही मानूँगा। केवल अच्छी चीजें तथा जीवन की सकारात्मक और अनुकूल परिस्थितियाँ ही गुरु या ईश्वर की कृपा के द्योतक नहीं होते। कृपा के पीछे एक उद्देश्य होता है, भले ही हम उसे समझें या न समझें।

मेरी दार्शनिक परम्परा वेदान्त की रही है, योग की नहीं। मैं योग की अपेक्षा वेदान्त के बारे में अधिक जानता हूँ, क्योंकि मैंने अनेक वर्षों तक इसका अध्ययन किया। फिर भी मैं योग का प्रचार कर रहा हूँ, वेदान्त का



नहीं, क्योंकि मेरे गुरु के अनुसार लोग दुर्बल संकल्पशक्ति से ग्रस्त हैं और सिर्फ योग से उनका कल्याण सम्भव है।

जब मैं गुरु आश्रम में रहता था, मेरे लिये किसी भी व्यक्ति को अपने सहयोगी के रूप में स्वीकार करना कठिन था। मैं यह नहीं चाहता था कि कोई मुझ पर निर्भर रहे। मैं सदैव सोचता था, 'मैं अकेला आया हूँ, अकेला जाऊँगा, इसलिए मुझे अकेले ही रहना चाहिये।' लेकिन आज मैं पाता हूँ कि आश्रम में हर व्यक्ति मुझसे अत्यधिक जुड़ा हुआ है। लोग हमेशा मेरी कुटिया का चक्कर लगाते हैं और मेरे दरवाजे के बाहर प्रतीक्षा करते रहते हैं। यह सब मेरे लिये बहुत असह्य है क्योंकि मैं एक भिन्न प्रकार का व्यक्ति हूँ। आपने देखा होगा कि मैं किसी व्यक्ति के कमरे में जाकर बातें नहीं करता, यह मेरा स्वभाव नहीं है। अनेक बार मैंने सोचा है कि सब कुछ छोड़कर शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करूँ। किन्तु जब भी मैं ऐसा सोचता हूँ, मुझे पुनः गुरु-गर्जना सुनाई पड़ती है, 'काम जारी रखो।' मैं अविलम्ब स्वीकार करता हूँ, 'जैसी आपकी आज्ञा', और क्लेश सहते मैं चलता चला जा रहा हूँ।

हालाँकि मैं अभी भी शिष्य ही हूँ, लेकिन मेरे ऊपर गुरुत्व आरोपित कर दिया गया है और मुझे यह भारी वजन उठाना है। सोचता हूँ कि एक शिष्य

के रूप में मेरे सामने कोई अन्य विकल्प नहीं है। इसलिए जब लोग पूछते हैं, 'क्या आप मेरे गुरु हैं?' तो मैं कह देता हूँ, 'हाँ', हालाँकि मैं यह कहना ज्यादा पसन्द करूँगा कि 'मैं तुम्हारे जैसा ही हूँ। ज्यादा-से-ज्यादा तुम मुझे बड़ा भाई या वरिष्ठ मित्र मान सकते हो।' लेकिन मुझे कहना पड़ता है, 'हाँ, मैं तुम्हारा गुरु हूँ' क्योंकि एक शिष्य होने के नाते मुझे गुरु-कृपा के प्रवाह में बहना है। शिष्य के पास कोई विकल्प नहीं होता। यदि शिष्य के पास कोई विकल्प होगा तो गुरु और शिष्य के बीच एक लौह-दीवार खड़ी हो जायेगी। तब गुरु इस दीवार की एक तरफ होंगे और शिष्य दूसरी तरफ, उनके बीच संचार असम्भव हो जायेगा।

मैंने अनेक महान् शिष्यों की जीवन-कथाएँ पढ़ी हैं। उनमें स्वामी विवेकानन्द की जीवनी भी एक है। उनका जीवन किस प्रकार गुरु-कृपा की लहरों पर तरंगित हुआ! रामकृष्ण परमहंस ने अपने कृपा-प्रवाह से उन्हें पूर्णतः आप्लावित कर दिया था और इसीलिए स्वामी विवेकानन्द अपने अल्प-कालीन जीवन में अपने गुरु के लक्ष्यों के प्रति पूर्णतया समर्पित रहे। प्रारम्भ में उनका व्यक्तित्व बहुत नकारात्मक था और वे रामकृष्ण के बारे में कहा करते थे कि मैं इस साधु को बिल्कुल भी पसन्द नहीं करता हूँ, लेकिन रामकृष्ण ने तो उनके बारे में अन्तिम निर्णय कर लिया था और एक बार जब गुरु निर्णय कर लेते हैं तो शिष्य के सामने कोई विकल्प नहीं रह जाता।

केवल भारत में ही नहीं, यूरोप में भी शिष्य के जीवन में गुरु-कृपा की पवित्र परम्परा सदा से कायम रही है। शिष्यों की कमी तो आज भी नहीं है, किन्तु गुरु-कृपा से युक्त शिष्य विरले ही मिलते हैं। मुझे प्रायः आश्चर्य होता है कि स्वामी शिवानन्द जी ने मुझे क्यों पसन्द किया। मेरी समझ में इसका सिर्फ एक ही कारण हो सकता है – मैं सदैव उनका एक परम उत्सुक और उत्साही अनुचर बना रहा। उनके जीवन की सामान्य-से-सामान्य घटना भी मेरे लिये बहुत अर्थपूर्ण होती थी। मैं उनके प्रत्येक शब्द, अभिव्यक्ति और गतिविधि का बहुत सावधानीपूर्वक अवलोकन किया करता था – वे क्या और कैसे खाते थे, कैसे और कितनी देर सोते थे, लोगों का किस प्रकार अभिवादन करते थे तथा उनके साथ कैसा व्यवहार करते थे, आदि। अनेक बार मैं यह भविष्यवाणी कर सकता था कि वे क्या सोच रहे हैं और कभी-कभी तो किसी विषय पर उनके द्वारा निर्णय लिये जाने के पूर्व ही मैं कह सकता था कि वे क्या करने जा रहे हैं।

कुछ विशेष परिस्थितियों में आश्रम निवासी मुझे पूछा करते थे कि स्वामीजी क्या करने जा रहे हैं और मैं बिल्कुल सही-सही भविष्यवाणी कर देता था। जब मैं उनकी बगल में खड़ा होता था तो उनकी विचार-तरंगों को स्पष्ट रूप से अनुभव कर सकता था। आज भी मुझे यह विश्वास नहीं होता है कि उनका देहान्त हो गया है। यह सही है कि अब वे इस संसार में नहीं हैं, किन्तु मेरे लिये ऐसा मानना बहुत कठिन है, क्योंकि जब वे जीवित थे तो उनका जो शरीर मुझे दृष्टिगोचर होता था, वह भौतिक पदार्थों का बना हुआ नहीं मालूम पड़ता था। वह किसी विशुद्ध-निर्मल दिव्य पदार्थ से निर्मित मालूम पड़ता था। सिर्फ एक दिन के लिये ही नहीं, बल्कि पूरे बारह वर्षों तक मैं उनके शरीर को इसी रूप में देखता रहा। जब तक मैं स्वामी शिवानन्द जी के साथ रहा, प्रत्येक वस्तु एवं विषय के सम्बन्ध में उनके साथ मेरा पूर्ण तादात्म्य बना रहा। गुरु और शिष्य के बीच इस प्रकार का एकत्व अवश्यमेव स्थापित होना चाहिये, तब गुरु की कृपा स्वतः प्रवाहित होने लगती है।

आप लोगों के समान मैं भी ईश्वर में विश्वास रखता हूँ, किन्तु ईश्वर के बारे में क्या और किस प्रकार विचार किया जाए? वे क्या हैं और क्या नहीं? आखिर वे एक मनुष्य तो हैं नहीं, न ही मात्र एक मूर्ति हैं, वे तो सम्पूर्ण हैं, समग्र हैं। मैं अपने इस लघु मस्तिष्क से उस सम्पूर्णता के बारे में कैसे सोच सकता हूँ? मस्तिष्क सीमित है जबकि ईश्वर असीम और अनन्त है। क्या यह सम्भव है कि सीमित मस्तिष्क अनन्त, असीम ईश्वर को देख सकता है?

असीम को देखने, समझने और अनुभव करने के लिये आपको स्वयं असीम बनना पड़ेगा। इसलिए वर्षों पूर्व मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि बेहतर यही है कि अपने गुरु से तादात्म्य स्थापित करो, उनके साथ एकाकार हो जाओ। जिस प्रकार नमक जल में, चीनी दूध में और सुगन्ध वायु में घुल-मिल जाती है, ठीक उसी प्रकार गुरु से एकत्व स्थापित किया जाना चाहिए, द्वैतता को पूर्णतया समाप्त कर देना चाहिए। जल नमकीन हो जाता है और नमक तरल। वे एक-दूसरे के गुणों को अपना लेते हैं। इस प्रकार का एकत्व स्थापित होने पर गुरु की कृपा निरन्तर प्राप्त होती रहती है। किन्तु बातें हम कितनी भी करें, व्यावहारिक जीवन के तथ्य तो भिन्न ही होते हैं। मस्तिष्क अति कठोर पदार्थ का बना होता है, वह जल्दी टूटता नहीं, और सत्य को जानते हुए भी हम विफल हो जाते हैं।

आश्चर्य किन्तु सच, मेरे साथ जो हुआ

कुसुम अग्रवाल (संन्यासी पवित्रमूर्ति), रायपुर

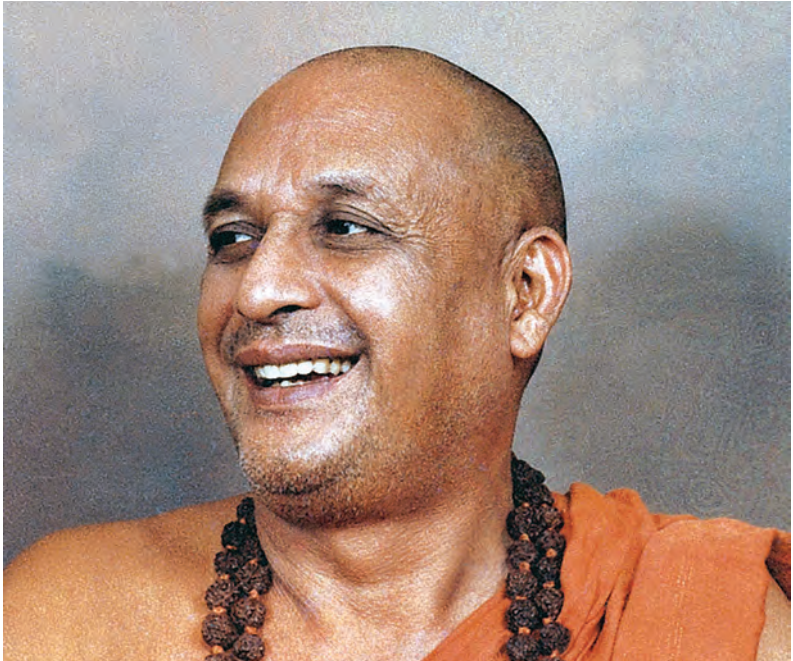
वैसे तो मैं गुरुजी (परमहंस सत्यानन्द जी) से सन् 1962 से जुड़ी हूँ। मेरे पिताजी (चूरन वाले बाबा) उनके अनन्य शिष्य थे। पूज्य स्वामीजी जब हमारे यहाँ आकर रुकते तो हम उन्हें पूछते थे, 'आप वापस कब जाओगे, हमें अच्छा नहीं लगता है!' क्योंकि वे हमें पसंद नहीं थे, न ही उनका हमारे यहाँ रुकना। पर किसे मालूम था कि वे ही हमारे संरक्षक हैं, भाग्य विधाता हैं। यही संस्कार बीज रूप में हम में पड़े, जो आज दृढ़ विश्वास, प्रेम और श्रद्धा के रूप में पल्लवित हैं। आज उन्हें याद कर आँसू गिर जाते हैं।

पूज्य स्वामीजी ने रविवार, 28 जून, सन् 2009 को हमें कह दिया था, 'अब तुम सब बातें स्वामी निरंजन से किया करो, हम रिटायर हो गए हैं।' जितनी भी शिकायत, शिकवे, परेशानी रहे, हमारा स्वभाव उन्हें बताने का रहा, क्योंकि संयुक्त परिवार में हम थे और कुछ-न-कुछ घटना होती रहती थी। अब स्वामी निरंजन जी हमारे संरक्षक बने। इसी प्रकार कई अनुभवों का कारवाँ चल रहा है। अभी का ताजा अनुभव जो मेरे लिए किसी चमत्कार से कम नहीं, यहाँ साझा कर रही हूँ।

हमें दमा पैतालीस वर्षों से है। पूज्य परमहंस जी व स्वामीजी, दोनों को पता है, वह हमारा प्रारब्ध है और सावधानी से रहना है, ऐसा उन्होंने बताया है। 28 फरवरी 2023 को हम डॉक्टर के पास चेकअप के लिए गए, उन्होंने कहा, 'पूरी जाँच के बिना हम ट्रीटमेंट नहीं देंगे।' क्या करते, सारी जाँच करायी – पी.एफ. टी, छह मिनट वॉक, एक्स-रे, सी.टी. स्कैन, एम.आर.आई., स्लीप स्टडी टेस्ट सब कुछ। 5 मार्च तक पूरी रिपोर्ट आई, 25-30 हजार खर्च हो चुके थे। ट्रीटमेंट मिला, दवाई पुरानी ही चलेगी, प्राणायाम, वॉकिंग और सी-पैप मशीन रात में लगाकर सोना है, नींद में ऑक्सीजन बहुत कम हो जाती है। अब हमें थोड़ी चिंता हुई, ऐसी महँगी मशीन, मन में गुस्सा भी आया, स्वामीजी कुछ कृपा नहीं करते। बच्चों की पूरी कमाई मुझ पर खर्च हो जाएगी, उनके और भी खर्च हैं, घर-परिवार और बच्चों के प्रति। बस सुबह स्वामीजी के सामने जो मन में आया गुस्सा उतार दिया।

इसके बाद मेरा मन अत्यंत आनंद से भर गया जब रात में परमहंस जी स्वप्न में एक संन्यासी के साथ मेरे घर रायपुर में आते हैं। पंचाग्नि वेश था, लंगोटी पहने हुये थे, बाल भी बढ़े हुये थे – ‘कुसुम! देखो हम तुम्हारे लिए क्या लाये हैं।’ वे हमको नाम से ही पुकारते थे। हमने कहा, ‘अरे स्वामीजी! आप? आइये, आराम कीजिये, यह कमरा खाली है।’ थोड़ी देर आराम किया, जब तीन बज गए तो ‘जाना है’ ऐसा बोलकर चले गए। हमने उनसे चाय के लिए भी नहीं पूछा। इसी बीच सामान खोलकर देखा तो सी-पैप मशीन! उसे देखकर हम आश्चर्यचकित हो गए। उनसे बोला, ‘अच्छा है स्वामीजी, बेटे के पैसे बच गए।’

सुबह जब सपने के बारे में सोचने लगे कि यह क्या हुआ तो स्वामीजी की फोटो देखकर हमारे आँसू रुक नहीं पाये। बहुत माफी मांगी उनसे, मन का सारा भार उतारा। एहसास हुआ कि जो कृपा मुझ पर है, शायद ही किसी पर हो, क्योंकि तीसरे दिन वह मशीन बेटे का दोस्त लाकर देता है और कहता है, ‘तुम रख लो, मुझे काम नहीं इसका।’ इसे अब हम क्या कहेंगे? विश्वास, श्रद्धा ही सब कुछ है।



गुरु-भक्ति कैसे जगायें?

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

गुरु और शिष्य के बीच निःस्वार्थ सम्बन्ध होना चाहिये। ऐसा प्रायः नहीं हो पाता, कभी-कभी ही हो पाता है। निःस्वार्थ सम्बन्ध स्थायी होता है, जबकि स्वार्थपूर्ण सम्बन्ध टिकाऊ नहीं होता। मान लीजिये कि आप किसी चीज के लिये गुरु के पास जाते हैं और वह आपको मिल जाती है, तब आप उनमें विश्वास करने लगते हैं। बाद में यदि वे आपकी किसी माँग की पूर्ति नहीं कर सकते हैं तो आप कहते हैं, 'ओह! अब वे मेरे गुरु नहीं रहे। पहले उनमें पर्याप्त आध्यात्मिक शक्ति थी, पर अब वे माया के चंगुल में फँस गये हैं और उनकी आध्यात्मिक शक्ति समाप्त हो गई है।' यह किस प्रकार की भक्ति या विश्वास है? एक बार जब आपने किसी को अपने गुरु के रूप में स्वीकार कर लिया है तो बात समाप्त हो जानी चाहिये। किन्तु ऐसा नहीं होता, क्योंकि हमारा विश्लेषण प्रायः बौद्धिक होता है।

समय के साथ गुरु और शिष्य के बीच का सम्बन्ध अधिकाधिक तीव्र होना चाहिये। आप इस सम्बन्ध को इस हद तक विकसित कर सकते हैं कि आप दोनों के बीच पूर्ण तादात्म्य स्थापित हो जाए – मैं अपने गुरु में हूँ और वे मुझमें हैं। और जब भी आप आँखें बन्द करें, वे आपके सामने उपस्थित हों।

यह आवश्यक नहीं है कि आप सदैव उनके सान्निध्य में रहें, किन्तु यह आवश्यक है कि वे आपकी श्वासों से भी अधिक निकट रहें। आप चौबीस घंटों में 21,600 बार श्वास लेते हैं और यदि तीन मिनट तक श्वास रुक जाती है तो आपकी जीवनलीला समाप्त हो जाती है। जीवन की यह इतनी महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है, जो आपके भौतिक अस्तित्व से पूर्णतः जुड़ी हुई है, पर शायद ही आप कभी सोचते हैं कि आप श्वास ले रहे हैं।

इसी प्रकार गुरु निरन्तर हमारे अन्दर निवास करते हैं, किन्तु हम नहीं जानते कि वे वहाँ स्थित हैं। इस सजगता को आप किस प्रकार विकसित कर सकते हैं? सर्वप्रथम आपको एक बाह्य गुरु चाहिये। वे एक मनुष्य हैं, इसलिए आप उनसे प्रेम कर सकते हैं, उनके बारे में सोच सकते हैं, उनके स्नेह, दयालुता और आशीर्वाद का अनुभव कर सकते हैं। आप उनकी सीमाओं को भी समझ सकते हैं। वे हमलोगों के जैसे ही रहते हैं। हम उनके साथ अपना तादात्म्य

स्थापित कर सकते हैं क्योंकि वे कमोबेश हमारे स्तर पर ही रहते हैं। इस प्रकार सजगता को अधिकाधिक तीव्र किया जा सकता है।

आप ध्यान या भोजन के समय उनके बारे में सोच सकते हैं। जब आप दुःखी और थके हों, पति या पत्नी से झगड़ा कर रहे हों, आपका बच्चा बीमार हो या अन्य किसी भी प्रकार की गड़बड़ी हो तो आप उन्हें याद कर सकते हैं। आप सैकड़ों-हजारों अवसरों पर उनके प्रति जागरूकता का अभ्यास कर सकते हैं और इस प्रकार सतत् सजगता विकसित कर सकते हैं। तब आप उसी सजगता को ईश्वर पर प्रक्षेपित कर सकते हैं।



इसलिए गुरु और शिष्य के बीच का सम्बन्ध किसी भी आयाम या स्तर पर विकसित किया जा सकता है। आप उन्हें अपने पूज्य, आदरणीय या प्रेमी के रूप में मान सकते हैं। आप जिस वस्तु को पसन्द नहीं करेंगे, उस पर एकाग्रता का अभ्यास नहीं कर सकेंगे। महात्मा बुद्ध के एक सूत्र में कहा गया है कि मानसिक एकाग्रता विकसित करने के प्रसंग में सबसे पहला स्थान पसन्द और प्रियता का आता है, तदुपरान्त प्रेम और अनुराग का। यदि आप एकाग्रता प्राप्त करना चाहते हैं, गुरु या अन्य किसी वस्तु में पूर्णतः लीन हो जाना चाहते हैं, तो आपको इसी क्रम में आगे बढ़ना होगा। सर्वप्रथम आप उन्हें पसन्द करें, और इस पसन्दगी से प्रियता उत्पन्न होनी चाहिये। आपको उनके बारे में सोचना अच्छा लगने लगता है। उसके बाद प्रेम, अनुराग और भक्ति विकसित होनी चाहिये। इनके बाद एकाग्रता स्वतः प्राप्त हो जायेगी। यदि आप किसी वस्तु को पसन्द नहीं करेंगे तो वह आपको सुखद नहीं लगेगी। उसके प्रति आपके अन्दर प्रेम उत्पन्न नहीं होगा और आप अपने मन को उसमें एकाग्र नहीं कर सकेंगे।

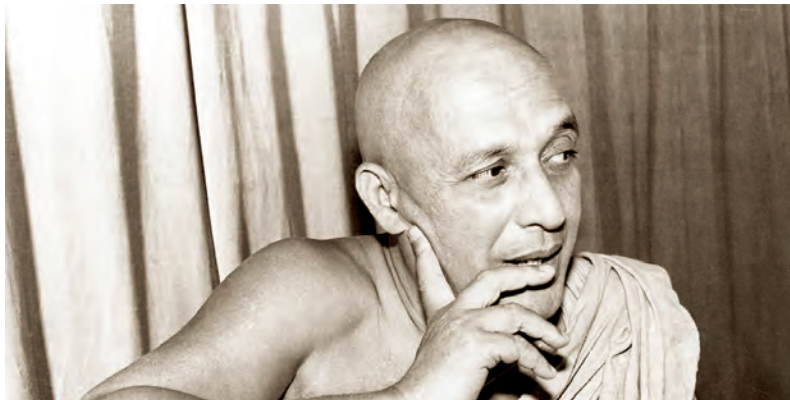
मुक्त मन

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

जब गुरु और शिष्य के बीच सम्बन्ध स्थापित होता है तो शिष्य से सिर्फ इस बात की अपेक्षा की जाती है कि वह अपने मन को मुक्त कर दे। मन को मुक्त करने के सिद्धान्त या प्रक्रिया की व्याख्या करना बहुत कठिन है। मन सदैव या तो इन्द्रियगत, मानसिक और भावनात्मक बातों में व्यस्त रहता है या गहनतर स्तरों में संलग्न रहता है। और हम प्रायः यह भी नहीं जान पाते हैं कि हमारे मन को कौन नियन्त्रित कर रहा है। भूत, वर्तमान और भविष्य के प्रत्येक विचार तथा किसी वस्तु या व्यक्ति से अच्छे-बुरे प्रत्येक सम्पर्क को मन से अलग किया जाना चाहिये। हमारी सजगता पर इनमें से किसी भी चीज का नियन्त्रण नहीं रहना चाहिये। जब मन इन उलझनों से मुक्त होता है तब वह एक अनुभव, अनुभूति, प्रकाश या दिव्यदृष्टि के रूप में एक अति महान् शक्ति से युक्त होकर प्रकट होता है। संक्षेप में, मैं अपने शिष्यों से इसी बात की अपेक्षा रखता हूँ।

दो हजार वर्ष पूर्व ईसा मसीह के उपदेशों को देश-विदेश में फैलाने वाले कौन थे? वे उनके ऐसे शिष्य थे, जो मुक्त मन से युक्त थे। इसी कारण वे लोगों के अन्तर्मन को प्रकाशित कर सके तथा दुःखी लोगों में उपचारक शक्ति का संचार कर सके और मैं भी आपसे यही अपेक्षा रखता हूँ।

आप आश्रम में या आश्रम के बाहर एक अच्छे योग शिक्षक के रूप में कार्य करने में सक्षम हो सकते हैं, किन्तु यह एक शिष्य का अति स्थूल और



सामान्य गुण है। हमेशा आपसे अच्छे शिक्षक भी मिल जायेंगे, जैसे कि अनेक लोग मुझसे बेहतर शिक्षक बन गये हैं। उनकी अभिव्यक्ति की क्षमता उत्तम है तथा वे मुझसे बेहतर बोल सकते और गा सकते हैं।

यदि आप विद्वान् नहीं हैं, आपने आध्यात्मिक पुस्तकों का अध्ययन नहीं किया है तथा अभिव्यक्ति की अच्छी क्षमता से युक्त नहीं हैं तो मेरे लिये कोई विशेष बात नहीं है। आपके पास शरीर, मन और इन्द्रियाँ हैं तथा सुख-दुःख पहुँचाने वाली वस्तुओं एवं विषयों का ज्ञान भी है। और समय-समय पर आप सुखकर चीजों की ओर आकर्षित होंगे तथा असुखकर चीजों से दूर जाना चाहेंगे। यह बात भी विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है। यह तो शरीर, मन और इन्द्रियों का एक प्राकृतिक, स्वाभाविक व्यवहार है। किन्तु इसे मन की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति के मार्ग में बाधक नहीं बनना चाहिये।

मन को स्वतन्त्र रहना चाहिये – चाहे आप सुख में हों या दुःख में, वैभव में हों या दरिद्रता में, युवकों के साथ हों या वृद्धों के साथ। बाह्य परिस्थितियों के साथ मन का तादात्म्य नहीं होना चाहिये और उसे इस प्रकार नहीं सोचना चाहिये कि 'मैं गरीब हूँ', 'मैं अमीर हूँ', 'मैं दुःखी हूँ' या 'मैं बहुत भाग्यवान् हूँ'। संन्यासी के रूप में हम अपनी पसन्द से गरीबी का जीवन जीते हैं। क्यों? इसलिए कि हमारा मन मुक्त रहे। वैभव, यश, प्रसिद्धि, वासनाएँ आदि इस महान् मानवीय शक्ति को सीमित और कुंठित कर देती हैं।

शिष्यों को, और विशेषकर युवा संन्यासियों को यह अच्छी तरह समझना चाहिये कि उन्होंने सिर्फ एक सम्प्रदाय या पद्धति का प्रतिनिधित्व करने के लिये ही इस मार्ग को नहीं अपनाया है। हम भौतिक, मानसिक और भावनात्मक स्तरों पर अपने जीवन को सहज-सरल बनाने का प्रयास कर रहे हैं ताकि मन मुक्त रह सके। यदि हम अपने मन को मुक्त रख सकें तो शक्ति बिना किसी साधना के भी, स्वतः जाग्रत होगी। यह एक सामान्य और वैज्ञानिक सिद्धान्त है।

आपको मालूम ही होगा कि पदार्थ विज्ञान में क्या होता है। आप पदार्थ को लेकर उसे विखण्डित करते हैं। प्रारम्भ में यह अनेक तत्त्वों का मिश्रण होता है, परन्तु जब आप तत्त्वों को पदार्थ से अलग करते हुए अन्तिम अवस्था में पहुँचते हैं तो क्या मिलता है? शक्ति या ऊर्जा प्राप्त होती है न? आधुनिक युग में हम उसे आणविक शक्ति कहते हैं। पदार्थ में शक्ति सदैव वर्तमान रहती है, किन्तु यह प्रसुप्त और अदृश्य अवस्था में रहती है। यदि आप एक मुट्ठी यूरेनियम या प्लूटोनियम लें तो आप एक मुट्ठी बालू के अतिरिक्त और कुछ नहीं देख

सकेंगे। स्थूल पदार्थ में शक्ति छिपी हुई है, किन्तु आप उसे न तो देख सकते हैं और न अनुभव कर सकते हैं। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक एक-एक करके तत्त्वों को अलग करता है और अन्ततः ऊर्जा को मुक्त करने में सफल होता है, उसी प्रकार जब आप मन को तत्त्वों से मुक्त करते हैं तब यह एक महान् शक्ति के रूप में प्रकट होता है। प्रत्येक शिष्य को इस शक्ति को जाग्रत करना चाहिये। तदुपरान्त उसे लोगों के बीच जाकर हर प्रकार से उनकी सहायता करनी चाहिये, चाहे वह उपचार से सम्बन्धित हो या मानसिक शान्ति या आध्यात्मिक ज्ञान से सम्बन्धित हो।

अब तक यह महान् मानवीय शक्ति कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः अप्रयुक्त रही है। यह प्रत्येक व्यक्ति में निहित है और कभी भी प्रकट हो सकती है। संन्यास में जो शिष्यत्व आपको प्रदान किया जाता है उसका लक्ष्य इस प्रक्रिया को सुसाध्य बनाना है। इस शक्ति को प्राप्त करने के बाद आपको बहुत सावधान रहना चाहिये ताकि जाने-अनजाने इसका दुरुपयोग न हो सके। यदि आपके पास एक रिवॉल्वर हो तो इससे एक मित्र या एक दुष्ट व्यक्ति, दोनों की हत्या हो सकती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि आपके मन में क्या है। अतः मन का शुद्धिकरण करना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है। अपने शिष्यों से यह मेरी दूसरी अपेक्षा है।

मन के अशुद्ध और अन्तर्मुखी होने पर या क्रोध, पूर्वाग्रह, वासना, घृणा, ईर्ष्या, लोभ और पसन्द-नापसन्द से युक्त रहने पर यदि यह शक्ति जाग्रत होती है तो वह व्यक्ति लोगों को लाभ की अपेक्षा हानि पहुँचायेगा। प्रत्येक परिस्थिति में शिष्य को आन्तरिक शान्ति और मौन की अवस्था में रहना चाहिये। यदि उसका गला घोंटा जा रहा हो या दण्डित किया जा रहा हो, तब भी उसे मानसिक शान्ति, समदृष्टि और पूर्ण नम्रता की भावना से युक्त तथा प्रतिरक्षा, घृणा और बदले की भावना से मुक्त रहना चाहिये। समझदारी और करुणा से पूर्ण एक प्रशान्त और अविक्षुब्ध शिष्य मानवता के कल्याणार्थ अपनी जाग्रत शक्ति का उपयोग करने हेतु सदैव तत्पर रहता है।

अभी आपकी संख्या निश्चय ही बहुत कम है, क्योंकि हमने अपना कार्य कुछ वर्ष पूर्व ही प्रारम्भ किया है। लेकिन मुझे पक्का विश्वास है कि थोड़े समय के अन्दर ही मेरे शिष्य सम्पूर्ण मानवता का मार्गदर्शन करने लगेंगे। भविष्य के लक्षण बिल्कुल स्पष्ट मालूम पड़ रहे हैं। अतः अपने शिष्यों से मैं दो बातों की अपेक्षा रखता हूँ— एक मुक्त, स्वतन्त्र मन और ऐसा मन, जो विशुद्ध हो।

श्रद्धांजलि

सत्यम् सेतु

संन्यासी योगप्रिया, पटना

प्रस्फुटित हुआ एक पुष्प अनूठा, इस धरती के आँगन में।
पूर्व जन्म की लिए धरोहर, सुरभित कर गए कानन को॥



सत्यम्-सेतु सन् 2023 में योग के इतिहास में एक नूतन अध्याय का उपहार लेकर आया है, जिसमें चारों ओर उल्लास, उमंग एवं प्रसन्नता की लहर दौड़ रही है। यह पूरा वर्ष श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज को समर्पित है, जिनके जन्म-शताब्दी वर्ष को हमने 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' के संकल्प से मनाने की शुरुआत कर दी है।

वर्ष का शुभारंभ हनुमान चालीसा के एक सौ आठ बार पाठ तथा सत्यम्-सेतु के लोकार्पण के साथ हुआ। जो संबंध हनुमान जी का श्री राम के साथ था, वही संबंध श्री स्वामी सत्यानन्द जी का उनके गुरु, श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के साथ था – सेवक और स्वामी का।

सत्यम्-सेतु गंगा दर्शन परिसर में निर्मित एक भव्य कलाकृति है जो श्री स्वामीजी के जीवन-वृत्त को उद्घोषित करती है। यह अलौकिक उपहार समस्त मानवता के लिए स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती जी की अपने गुरु के प्रति समर्पण की अभिव्यक्ति है। सत्यम्-सेतु मानव जीवन की एक ऐसी उड़ान है जो अपने जीवन की नकारात्मकता को छोड़कर नहीं, अपितु उसे रूपांतरित कर एक प्रकाशमय पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा प्रदान करता है। सेतु का तात्पर्य ही है जोड़ने वाला, न कि छोड़ने वाला। श्री स्वामीजी ने प्रेम, सेवा और समर्पण, तीनों का संयोग करके एक ऐसे पथ को प्रकाशित किया है, जिस पर चलकर समस्त मानवता अपने जीवन को सुंदरमय बनाने की चेष्टा कर सकता है, अपनी आत्मा की सकारात्मक निधियों का आनंद प्राप्त कर सकता है। श्री स्वामीजी का सम्पूर्ण जीवन हमारी प्रकृति के सभी सद्गुणों को उद्घाटित करता है, चाहे वह गुरु-भक्ति हो, सत्कर्म हो, सेवा, करुणा, समर्पण या फिर जन-कल्याण हेतु किए गए अथक प्रयास ही क्यों न हो।

सत्यम्-सेतु का प्रथम पथ योग की सीढ़ियाँ हैं, जिनपर चलते हुए श्री स्वामी सत्यानंद जी ने अपने गुरु के आदेश को पूरा करते हुए योग को पूरे विश्व में पहुँचाया। यह वह समय था जब योग को लेकर जनमानस में अनेक भ्रांतियाँ थीं, जैसे योग साधुओं की बपौती है, गृह-त्यागियों के लिए है, काला जादू है आदि। श्री स्वामीजी ने अपने गुरु के आदेशानुसार पूरे विश्व में घूम-घूम कर तीनों महासागरों को लाँघते हुये योग रूपी वटवृक्ष के बीजों को, जो उनके स्वयं के आत्मबल, संकल्पशक्ति और गुरु की कृपा से सिंचित थे, पूरी निष्ठा से बिखेरा। फलस्वरूप भ्रांतियों के बादल छंट गए, मानव चेतना में स्फुरण हुआ और योग का अमृत-कलश ऐसा छलका कि सम्पूर्ण वसुधा जीवंत हो उठी। सन् 1963 में श्री स्वामीजी ने बिहार योग विद्यालय की स्थापना मुंगेर में की और आज मुंगेर विश्व-पटल पर 'योगनगरी' के रूप में स्थापित हो चुका है। वह दिन दूर नहीं जब श्री स्वामीजी की भविष्यवाणी – 'योग भविष्य की संस्कृति बनेगी' चरितार्थ होते पूरी दुनिया देखेगी। इस संस्कृति को पुनर्स्थापित करने का बीड़ा स्वामी निरंजनानन्द जी ने उठाया है।

सत्यम्-सेतु का दूसरा पथ सेवा को समर्पित है। यह जन-कल्याण हेतु सेवा, प्रेम और दान रूपी ईंटों पर गढ़ी गयी है और श्री स्वामीजी की तपस्या, अनुष्ठान और भक्ति-भाव के प्रतीक रिखियापीठ में है। अपने जीवन के अंतिम बीस वर्षों में श्री स्वामीजी ने निःस्वार्थ सेवा द्वारा अपनी आत्मा की शुद्धिकरण



का मार्ग दिखलाया है। उन्होंने बतलाया कि जब मनुष्य अति आधुनिकता से त्रस्त होकर अपनी मानसिक शांति खो बैठेगा, तब वह भक्ति मार्ग की ओर उन्मुख होगा जिसकी परिणति आत्म-संतुष्टि में होती है। जैसे-जैसे मन शुद्ध विचारों से परिष्कृत होगा, ज्योतिर्मय पथ उजागर होता जाएगा और मनुष्य अपने हृदय में आत्म-साक्षात्कार की अनुभूति कर पाएगा। सही मायने में यही तो योग है, जिसकी परिकल्पना हमारे गुरुजनों ने की है।

सत्यम्-सेतु की तीसरी सीढ़ी समर्पण के प्रकाश से आलोकित है। जब शरीर स्वस्थ रहेगा, भावनायें शुद्ध होंगी तो समर्पण की स्थिति स्वतः प्रस्फुटित हो उठती है, यही सत्कर्म, सद्बिचार और सद्व्यवहार की अभिव्यक्ति है। मुंगेर स्थित संन्यास पीठ श्री स्वामीजी की संकल्पशक्ति की पराकाष्ठा का मूर्तरूप है, जिसकी प्रेरणा व आदेश स्वामी निरंजनानन्द जी को आगामी पीढ़ी को दिव्य जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त करने हेतु दिया गया है।

संन्यास पीठ मात्र संन्यासियों के प्रशिक्षण का केंद्र ही नहीं है, बल्कि समस्त प्राणियों के दिव्य जीवन की आधारशिला है, जिसका शंखनाद स्वामी निरंजनानन्द जी के कुशल नेतृत्व में पूरे विश्व में गुंजित हो रहा है और आध्यात्मिक जीवनशैली के नूतन पन्नों को नित-नित उद्घाटित करता जा रहा है।

सत्यम्-सेतु के किसी भी मार्ग पर चलने वाला साधक अपनी मंजिल तय करने में श्री स्वामीजी को प्रकाश-स्तम्भ के रूप में ही पाएगा, निरंतर हमारा हाथ थामे सत् के मार्ग को निर्देशित करते। शर्त एक ही है कि हम अपने कर्तव्य-लक्ष्य के प्रति निष्ठावान् बने रहें, ताकि एक दीपक की लौ के सदृश

ज्योतिर्मय पथ पर बढ़ते चलें। सत्कर्म, सद्बिचार और सद्व्यवहार रूपी त्रिगुणों से अपने अस्तित्व को सुसज्जित करना ही योग है। मन के नकारात्मक गुण, जैसे क्रोध, लोभ, अहंकार, द्वेष, घृणा इत्यादि बालक के जन्मजात होते हैं, इन्हें सिखलाना नहीं पड़ता, किन्तु दया, सेवा, प्रेम, दूसरों का सम्मान करना इत्यादि सद्गुणों के बीज माता रूपी गुरु ही सिखलाते हैं। यद्यपि इन गुणों के संस्कार रूपी बीज बच्चे स्वयं लेकर आते हैं, परंतु स्नेह, वात्सल्य, करुणा और कभी-कभी अनुशासन की छड़ी से खाद-पानी और गुड़ाई माँ को करनी पड़ती है, ताकि एक सुंदर पुष्प प्रस्फुटित हो सके।

दुनिया भले ही श्री स्वामी सत्यानंद जी को योग के शिक्षक के रूप में अधिक जानती है, पर उन्होंने योग को सिर्फ आसन, प्राणायाम, ध्यान या फिर समाधि तक ही सीमित नहीं रखा, अपितु स्वयं की चेतना के विकास हेतु एक नए आयाम की ओर भी इंगित किया। हमारी अंतर्निहित चेतना में वे सारे गुण हैं, जो ब्रह्मांडीय चेतना में हैं, परंतु वे माया के आवरण से ढँके हुये हैं, जिससे हम अपनी अपार शक्ति से अनजान हैं। अपनी सभी तामसिक वृत्तियों का सामना करते हुये, द्रष्टा भाव से समझते हुये उनमें कैसे संशोधन किए जा सकते हैं, यही श्री स्वामीजी ने योग में तंत्र की भूमिका बताते हुये पुनर्स्थापित किया है। उन्होंने सिर्फ पुस्तकें ही नहीं लिखीं, प्रवचन ही नहीं दिये, बल्कि अपने कहे हुये एक-एक शब्द को अक्षरशः स्वयं जिया भी। उनका सम्पूर्ण जीवन मानवता के उत्थान का प्रतीक स्वरूप है। उन्होंने बतलाया कि जब कर्म निःस्वार्थ और समर्पण की भावना से, पूर्ण सजगतापूर्वक किया जाता है तो चेतना के उच्च स्तरों की ओर अभिमुख होता है और यही योग की परिणति है। चेतना के उत्थान में भाव-शुद्धि की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है।

गंगादर्शन के सुरम्य स्थल, सत्यम्-वाटिका के सम्मुख तीन महासागरों से घिरा सत्यम्-सेतु स्वामी निरंजनानन्द जी की गुरुभक्ति की मार्मिक अभिव्यक्ति है, जिसके शीर्ष पर श्री स्वामीजी मानों मानसरोवर कैलाश से समस्त मानवता को अपनी दिव्य आभा से, होठों पर मुस्कान लिए, दोनों बाहें फैलाये, ज्योतिर्मय पथ की राहों पर आगे बढ़ाने की प्रेरणा दे रहे हैं। यह तेजोमय व्योमातीत प्रकाश-स्तम्भ आने वाले कल की जीवन-ज्योति है।

*श्रद्धा-सुमन अर्पित करूँ क्या, भाव तेरे हैं निराले।
बाल-सुलभ है हँसी तुम्हारी, करुणा पूरित आशीष तुम्हारे॥*

भगवान के रूप

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

भगवान का रूप होता है और भगवान निराकार भी है। अब तुम पूछ सकते हो कि निराकार का रूप कैसा होगा? मिट्टी का क्या रूप होता है? दिया, सकोरा, घड़ा या खिलौना? मिट्टी का अपना कोई रूप नहीं है। जिस रूप में ढाल दो, वही उसका रूप है। सोने का क्या रूप है? अंगूठी या कँगन कहकर तुमने उस आकृति को एक नाम दिया, मगर वह सोने का वास्तविक रूप तो नहीं। सोना रूप रहित है, मिट्टी रूप रहित है। उसी तरह परमात्मा भी रूप रहित है। मगर उसे किसी ने कृष्ण बना दिया, किसी ने राम, और वही उनका रूप हो गया। रामचरितमानस में शंकर जी ने पार्वती से यही कहा है कि भक्तों के प्रेमवश भगवान विभिन्न सगुण रूप धारण किया करते हैं –

*सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥
जो गुन रहित सगुन सोई कैसें। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें॥*

किसी ने उनको योगी के रूप में देखा, किसी ने बावले के रूप में देखा, किसी ने भूत-पिशाच की तरह देखा, गाँजा पीकर मस्त पड़े देखा, शादी करते हुए देखा। ऐसी कोई बात तो नहीं कि न देखा हो। आखिर जिन्होंने देखा है,



वे झूठ क्यों बोलेंगे? जो सच है, वह सच है। परमात्मा के सभी रूप होते हैं। इसीलिए उनको 'सर्व रूप रूपाय' बोलते हैं। कठोपनिषद् में कहा गया है –

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥

अर्थात् जिस प्रकार अग्नि विश्व में आकर जिस वस्तु को जलाती है उसी का रूप धारण कर लेती है, उसी प्रकार आत्मा, जो सभी प्राणियों में एक ही है, एक होने पर भी विभिन्न स्वरूप ग्रहण कर लेती है। यम ने नचिकेता को अपने उपदेश के क्रम में यही समझाया था।

इस ब्रह्माण्ड में उपस्थित प्रत्येक वस्तु एक ही काल में कई रूपों में अभिव्यक्त होती है। जो कुछ तुम एक स्थूल आकार के रूप में देखते और समझते हो, वह केवल स्थूल नहीं है। मान लो, तुम एक फूल के बारे में विचार करते हो। फूल को देखने से तो तुमको फूल का स्थूल रूप दिखाई दे रहा है, परन्तु जब फूल के बारे में सोचते हो, कल्पना करते हो, तब वह अनुभव फूल का सूक्ष्म रूप है। वह सूक्ष्म रूप क्या है?

वह तुम्हारे मन की एक अभिव्यक्ति है। जब तुम फूल की कल्पना करते हो, तब वास्तव में अपने मन को ही एक फूल के रूप में देखते हो। जो अनुभव तुम्हारे भीतर हो रहा है, उसके अनेक स्तर हो सकते हैं, जो तुम्हारे मन की गहराई पर निर्भर हैं। तुम स्वप्न में भी गुलाब देख सकते हो और ध्यान में भी, परन्तु दोनों में फर्क है। स्वप्न में मन की एक अवस्था होती है, ध्यान के समय दूसरी। इस प्रकार अनुभवगम्य पदार्थ भी वस्तुतः भिन्न हो जाते हैं। जो गुलाब तुमने स्वप्न में देखा, जो गुलाब तुमने ध्यान में देखा और जो तुमने बाहर पौधे के साथ देखा, ये तीनों अलग-अलग गुलाब हैं। जब तुम्हारा मन बाह्य चेतना से हट कर बहुत गहराई में उतर जाता है तब तुम अपने भीतर उस गुलाब के फूल को उतनी ही स्पष्टता से देख सकते हो जितनी स्पष्टता से तुमने बाह्य गुलाब को देखा था। इसी को अनुभव कहते हैं। वही अनुभव मण्डलाकृति या प्रतीक या अपरोक्षानुभूति कहलाता है। यही अपरोक्षानुभूति शिव का रूप है, तुम्हारी आत्मा के अन्तरतम मर्म का अभिव्यक्तिकरण है।

इसलिए भगवान को तुम सब रूपों में देखो। भगवान को तुम देवी के रूप में, सुन्दर बालमुकुन्द के रूप में, धनुर्धारी राम के रूप में या बंशीधर कृष्ण के रूप में, किसी भी रूप में देख सकते हो। भगवान को जिस रूप में तुम

देखना चाहो, उस रूप में उसकी उपासना करो और वही रूप प्रकट होगा।
रामचरितमानस में तुलसीदास जी कहते हैं –

जिन्ह के रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥

कुछ लोग फिर भी कह सकते हैं कि यह रूप काल्पनिक है। पर कल्पना आखिर है क्या? संसार में कोई भी चीज काल्पनिक नहीं है, हर एक चीज सत्य है। हम तो भई अपने अनुभव से बोलते हैं। हमको ऐसा लगता है कि भगवान तो अपने दोस्त हैं, सखा हैं, जो हमेशा अपना हित करते हैं, मगर हम ही उनको भूल जाते हैं। स्वामी शिवानन्द जी महात्मा बिन्दु जी का एक भजन गाया करते थे –

*जीवन का मैंने सौंप दिया, सब भार तुम्हारे हाथों में।
उद्धार पतन अब मेरा है, सरकार तुम्हारे हाथों में ॥*

भगवान हमेशा सखा की तरह अपने साथ रहते हैं। स्वामी शिवानन्द जी कहते थे कि भगवान श्वासों के श्वास हैं, प्राणों के प्राण हैं, जीवन की जीवनी शक्ति हैं। वही हमारी एकमात्र वास्तविकता हैं। संसार में यही एक सत्य है।

लेकिन बहुत-से लोग अपने आपको संकीर्णता के कारण पृथक् किये रहते हैं। बिजली का करंट प्रवाहित नहीं हो पाता। माया की वजह से पृथक् रहते हैं। पृथक्ता के आधार माया को हटा दो, तो भगवान की विद्युत धारा स्वतः प्रवाहित होने लगेगी। इस प्रकार धीरे-धीरे भगवत्-प्रेम प्रगाढ़ और गहरा होता जाता है। जिस तरह एक आशिक अपनी माशूका को सब तरफ देखता है, सब जगह उसको वही दिखाई देती है, वैसे ही एक भक्त भगवान को सब जगह देखता है – मुझमें, तुझमें, सब लोगों में।

*लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ॥*

जहाँ देखो तहाँ राम, और जीवन का असली उद्देश्य भी यही है। जीवन में बाकी सब तो मजबूरी में करना पड़ता है। पढ़ना पड़ता है, नौकरी करनी पड़ती है, इच्छाओं को पूरा करना पड़ता है, लेखा-जोखा पूरा करना पड़ता है। यह सब करते हुए भी एक विचार मन में प्रश्न की तरह सदा चलना चाहिए कि किस प्रकार प्रभु के साथ सम्बन्ध स्थापित हो। अगर 'मैं' 'वह' हूँ, तो



‘उसे’ कैसे जानें? अगर मैं भगवान का अंश हूँ, तो वह अनुभव मुझे क्यों नहीं हो रहा है?

अनुभव होगा भी कैसे! हम लोग भूल चुके हैं कि हम भगवान के अंश हैं। जैसे दिमाग में चोट लगने से आदमी सब भूल जाता है, अपने माँ-बाप के नाम का भी उसे पता नहीं रहता, ऐसे ही हम भी भूल गये हैं,

विस्मृति हो गयी है। नौकरी वगैरह जीवन का सार नहीं है। बीस-पचीस साल तक नौकरी है, फिर एक दिन जायेगी। यह तो केवल अहंकार का खेल है, जिसमें हम लोग पड़े रहते हैं। जैसे सूअर को विष्ठा खाने में मजा आता है, वैसे अपने को चक्कर खाने में मजा आता है। यह मत सोचो कि निन्दा कर रहा हूँ, क्योंकि संसार में तो सबको रहना है। संसार कीचड़ है, अब जोंक बनकर रहना है तो जोंक बनो और कमल बनना है, तो कमल बनो।

ईश्वर का कोई प्रमाण है?

बात ऐसी है कि ‘तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता अँखियन की देखी’। अँखियन की देखी का मतलब है अनुभव। विद्वान् और शास्त्रार्थ करने वाले सब अनुमान-प्रमाण के आधार पर बातें करते हैं, पर यह तो अनुभव से ही पता चलता है कि उसमें कितनी सच्चाई है। यह हुई पहली बात। दूसरी बात है, प्रमाण की जरूरत क्या है? मान लो हम ईश्वर को सिद्ध करने चले हैं। क्या फर्क पड़ता है? ईश्वर तो भजनीय, वन्दनीय, पूजनीय और ध्यान के योग्य है। साधक के लिए तो इसका कोई मूल्य नहीं है कि भगवान साकार है या निराकार, हम उसके अंश हैं या स्वरूप हैं, हम उसकी सृष्टि हैं या वह हमारे अन्दर है, हम उसकी सन्तान हैं या प्रकृति ने हमको पैदा किया है। भगवान का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। यह सब पढ़ते-पढ़ते बाल सफेद हो गये। अन्त में एक ही निष्कर्ष निकलता है। कितना भी तुम योग करो, शास्त्र पढ़ो, यज्ञ करो, तप करो, कुछ भी करो, भगवान उससे नहीं मिल सकते, मिलने का आधार है – प्रेम और भक्ति।

जैसा तुम अपनी बीवी-बच्चे और सम्पत्ति से प्यार करते हो, या जितनी गहराई से तुम्हारा मन अपने शत्रु के विषय में सोचता है, या जब अपना कोई

प्यारा बीमार पड़ जाता है तब खाते-पीते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, उसी की चिन्ता लगी रहती है, ऐसी ही लगन ईश्वर के प्रति होनी चाहिए।

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

ऐसी भावना ईश्वर के प्रति होनी चाहिए। भगवान किसी भी रूप में प्रकट हो सकते हैं। किसी ने कहा राम का रूप, किसी ने कहा शिव का रूप, किसी ने कहा हनुमान का रूप, किसी ने कहा काली का रूप। इसलिए 'सब तजि भजिये नंद-कुमार'। सब साधनाओं को त्याग कर केवल भगवान के साथ प्रेम का सम्बन्ध जोड़ लो। अगर वे तुम्हारे पिता हैं, पिता की तरह प्यार करो। वे तुम्हारे पुत्र हैं तो कौशल्या की तरह प्यार करो। वे तुम्हारे पति हैं तो राधा की तरह प्यार करो और अगर तुम्हारे शत्रु हैं तो रावण की तरह प्यार करो।

अगर भगवान सबसे प्रेम करते हैं, तो फिर पीड़ा क्यों होती है?

मेरी माँ मुझसे प्यार करती है, लेकिन मेरे शरीर में यदि घाव हो जाए तो वही उसका ऑपरेशन भी कराती है। ऑपरेशन के समय जब मुझे पीड़ा होगी और मैं रोऊँगा तब क्या कहोगे कि माँ निर्दयी है? तुलसीदास जी कहते हैं –

जदपि प्रथम दुख पावइ रोवइ बाल अधीर।
ब्याधि नास हित जननी गनति न सो सिसु पीर॥
तिमि रघुपति निज दास कर हरहिं मान हित लागि।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहि कस न भजहु भ्रम त्यागि॥

प्रभु तो माँ की तरह अपने अमानी दास की रक्षा करते हैं। पीड़ा आखिर है क्या? पीड़ा एक तरह से अनुग्रह है। हम हमेशा पीड़ा से भागते हैं, उसे नहीं चाहते। लेकिन वास्तव में पीड़ा एक शुद्धि की प्रक्रिया है, बुरे कर्मों का नाश है। पीड़ा और दुःख एक ऐसी भट्टी है, जिसमें प्रकृति मनुष्य को तब डालती है, जब वह उसे एक महान् पुरुष बनाना चाहती है। जो पीड़ा सह लेते हैं, वे पुरुषोत्तम हो जाते हैं। ईसा मसीह को कितना कष्ट हुआ था, महात्मा गाँधी को कितना दुःख हुआ, राम जी ने कितना दुःख भोगा था। इसलिए जिस आदमी को किसी प्रकार का दुःख होता है, उसे बराबर सोचना चाहिए कि भगवान उसे जगा रहे हैं।

दान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

आश्रम के लिए दान राशि केवल निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत स्वीकार की जाएगी –

1. सामान्य दान

जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन को दिया जा सकता है और जिसका उपयोग यौगिक गतिविधियों के विकास एवं संवर्द्धन के लिए किया जाएगा।

2. मूलधन निधि के लिए दान

बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन की मूलधन निधि के लिए।
मूलधन निधि से प्राप्त ब्याज राशि का उपयोग संस्था/न्यास की सभी गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

3. सी.एस.आर. दान

जिसका उपयोग सी.एस.आर. गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

इसलिए भक्तों से निवेदन है कि वे केवल उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी दान राशि भेजें।

बिहार स्कूल ऑफ योग को दान 'SB Collect Online Donation Facility' के माध्यम से निम्नलिखित वेबसाइट द्वारा सीधे दिया जा सकता है – <https://www.onlinesbi.sbi/sbicollect/icollecthome.htm?corpID=2277965>

आप चेक, डी.डी. अथवा ई.एम.ओ. द्वारा भी दान दे सकते हैं जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट या योग रिसर्च फाउण्डेशन के नाम से हो और मुंजर में देय हो।

दान राशि के साथ एक पत्र संलग्न रहे जिसमें आपके दान का प्रयोजन, डाक पता, फोन नम्बर, ई-मेल और PAN नम्बर स्पष्ट हों।



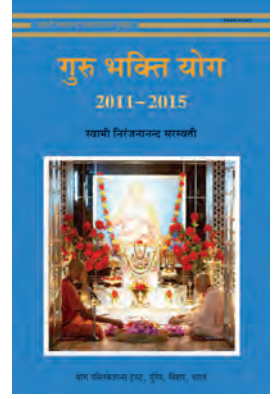
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

गुरु भक्ति योग 2011-2015

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 160, ISBN: 978-93-94604-12-4

श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती 5 दिसम्बर, 2009 को रिखियापीठ में महासमाधि में लीन हुए और 6 दिसम्बर को उन्हें विधिवत् भू-समाधि दी गयी थी। स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती ने 5 जनवरी 2011 को गंगा दर्शन विश्व योगपीठ, मुंगेर में गुरु भक्ति योग साधना की परम्परा का श्रीगणेश किया, जो प्रत्येक महीने की 5 और 6 तारीख को सम्पन्न की जाती है। गुरु भक्ति योग शृंखला के अन्तर्गत यह पहली पुस्तक है, जो 2011 से 2015 तक इस साधना के अवसर पर स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती द्वारा दिए गये सत्संगों का संकलन है।



नया प्रकाशन

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 9162783904

☑ जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा



वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारीयाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

बिहार योग परम्परा की समस्त प्रकाशित कृतियाँ satyamyogaprasad.net वेबसाइट पर तथा Android एवं iOS उपकरणों पर एप्प के रूप में प्रस्तुत हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना

biharyoga.net तथा satyamyogaprasad.net पर स्वस्थ जीवन हेतु यौगिक जीवनशैली साधना उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ Android एवं iOS उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- Bihar Yoga एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- For Frontline Heroes एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

- Registered with the Department of Post, India
Under No. MGR-01/2020-23
Office of posting: Ganga Darshan TSO
Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2023

बिहार योग विद्यालय योगविद्या प्रशिक्षण

जुलाई 2022-जुलाई 2024	आश्रम जीवन प्रशिक्षण
जुलाई 1-दिसम्बर 31	योग चक्र अनुभव
सितम्बर 20-28	हठ योग एवं कर्म योग प्रशिक्षण
अक्टूबर 4-12	राज योग एवं भक्ति योग प्रशिक्षण
अक्टूबर 15-29	प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण
नवम्बर 20-29	क्रिया योग एवं ज्ञान योग प्रशिक्षण

बिहार योग भारती योगविद्या प्रशिक्षण

अगस्त 7-अक्टूबर 7 द्विमासिक यौगिक अध्ययन (हिन्दी)

कार्यक्रम

नवम्बर 4-12 मुंगेर योग संगोष्ठी 2

मासिक कार्यक्रम

प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	गुरु भक्ति योग
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ